पंचभूत

लेखक

गोविन्ददास

प्रकाशक
रामप्रसाद एण्ड सन्स
आगरा

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

निवेदन

इस संग्रह में पाँच ऐतिहासिक एकांकी नाटक संग्रहीत हैं—कुछ बड़े हैं और कुछ छोटे। एकांकी नाटक छोटे ही हों, बड़े नहीं, यह मैं नहीं मानता। एकांकी बड़े भी हो सकते हैं, पूरे नाटक के सदृश बड़े। इस सम्बन्ध में अपने मत का विस्तृत विवेचन मैंने अपने एकांकी नाटकों के पहले संग्रह 'सप्त-रश्मि' के प्राक्कथन में किया है।

इस संग्रह में संग्रहीत निम्न लिखित नाटकों की कथा निम्न लिखित ऐतिहासिक ग्रन्थों से ली गयी है—

१. जालौक और भिखारिणी—
२. चन्द्रापीड़ और चर्मकार— } संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राज तरंगिणी' (काश्मीर का इतिहास)।

३. शिवाजी का सच्चा स्वरूप—सर यदुनाथ सरकार का प्रसिद्ध अंग्रेज़ी ग्रन्थ—'शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स।'

४. निर्दोष की रक्षा—अरविन के अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लेटर मुगल्स'।

५. कृष्णकुमारी—कर्नल टाड का प्रसिद्ध अंग्रेज़ी ग्रन्थ तथा महा-महोपाध्याय राय बहादुर डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का प्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ 'राजपूताने का इतिहास'।

'चन्द्रापीड़ और चर्मकार' के दोनों गानों में से पहला गान है महाकवि सूरदास का और दूसरा है सन्त रैदास का। 'कृष्णकुमारी' का गान मेवाड़ के एक पुराने कवि का है।

गोपालबाग, जबलपुर
ज्येष्ठ शुक्ल १० (गंगा दशहरा), १९९९ } —गोविन्ददास

निवेदन

इस संग्रह में पाँच ऐतिहासिक एकांकी नाटक संग्रहीत हैं—कुछ बड़े हैं और कुछ छोटे। एकांकी नाटक छोटे ही हों, बड़े नहीं, यह मैं नहीं मानता। एकांकी बड़े भी हो सकते हैं, पूरे नाटक के सदृश बड़े। इस सम्बन्ध में अपने मत का विस्तृत विवेचन मैंने अपने एकांकी नाटकों के पहले संग्रह 'सप्त-रश्मि' के प्राक्कथन में किया है।

इस संग्रह में संग्रहीत निम्न लिखित नाटकों की कथा निम्न लिखित ऐतिहासिक ग्रन्थों से ली गयी है—

१. जालौक और भिखारिणी—
२. चन्द्रापीड़ और चर्मकार— } संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राज तरंगिणी' (काश्मीर का इतिहास)।

३. शिवाजी का सच्चा स्वरूप—सर यदुनाथ सरकार का प्रसिद्ध अंग्रेज़ी ग्रन्थ—'शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स।'

४. निर्दोष की रक्षा—अरविन के अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लेटर मुगल्स'।

५. कृष्णकुमारी—कर्नल टाड का प्रसिद्ध अंग्रेज़ी ग्रन्थ तथा महा-महोपाध्याय राय बहादुर डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का प्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ 'राजपूताने का इतिहास'।

'चन्द्रापीड़ और चर्मकार' के दोनों गानों में से पहला गान है महाकवि सूरदास का और दूसरा है सन्त रैदास का। 'कृष्णकुमारी' का गान मेवाड़ के एक पुराने कवि का है।

गोपालबाग, जबलपुर
ज्येष्ठ शुक्ल १० (गंगा दशहरा), १९९९ } —गोविन्ददास

विषय-सूची

१. जालौक ग्रौर भिखारिणी १
२. चन्द्रापीड़ ग्रौर चर्मकार २५
३. शिवाजी का सच्चा स्वरूप ६५
४. निर्दोष की रक्षा १०५
५. कृष्णकुमारी १२६

जालौक और भिखारिणी

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र—

जालौक—काश्मीर का राजा

ईशानदेवी—जालौक की रानी

मंत्री

राजगुरु

एक भिखारिणी

स्थान—काश्मीर

समय—लगभग २०० वर्ष ईसा के पूर्व

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र--

जालौक--काश्मीर का राजा

ईशानदेवी--जालौक की रानी

मंत्री

राजगुरु

एक भिखारिणी

स्थान--काश्मीर

समय--लगभग २०० वर्ष ईसा के पूर्व

पहला दृश्य

स्थान—काश्मीर के श्रीनगर में राजप्रासाद का एक निवास-कक्ष

समय—मध्याह्न

[कक्ष की भित्तियों पर केशरी तैल रंग है, जिस पर सुन्दर चित्रकारी है। द्वारों की चौखटों और कपाटों के श्याम काष्ठ में खुदाव एवं जाली का काम है। खुले हुए द्वारों से दूर पर हिमाच्छादित शिखरों वाली पर्वत-मालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका हिम मध्याह्न के सूर्य की किरणों से हीरक के सदृश चमक रहा है। शिखरावली के नीचे का पर्वत-प्रदेश वृक्षों से भरा है; इनमें अधिकतर चिनार के वृक्ष हैं। कक्ष की छत काष्ठ के स्थूल-स्तम्भों पर स्थित है। इन स्तम्भों पर सुन्दर खुदाव है। कक्ष की पृथ्वी पर कामदार कम्बल वस्त्र (एक प्रकार का ऊनी कपड़ा) की सुन्दर बिछावन है। बिछावन पर सुवर्ण से मंडित तथा रत्नों से जटित पीठें (बैठने की चौकियाँ) व्यवस्थित रूप से सजी हैं। इन पर कौशेय वस्त्रों से ढकी हुई गद्दियाँ बिछी हैं तथा कामदार तकिये लगे हैं। राजा जालौक कक्ष में इधर-उधर घूम रहा है। जालौक की अवस्था लगभग ६५ वर्ष की है। वह गौरवर्ण का, ऊँचा-पूरा एवं गठे हुए शरीर का व्यक्ति है। बालों की श्वेतता के अतिरिक्त वृद्धावस्था का कोई चिह्न शरीर पर नहीं है। सँवारे हुए लंबे केश और ऊपर की ओर चढ़ी हुई बड़ी बड़ी मूछें हैं। सारे बाल सफेद हैं। बालों में सामने की ओर अर्द्धचन्द्राकार श्वेत पुष्पों की माला है। ऊपर के शरीर को नील-वर्ण का कामदार कराल वस्त्र (एक प्रकार का बहुमूल्य ऊनी कपड़ा)

ढँके हुए हैं। यह वस्त्र भुजाओं के नीचे पसवाड़ों तथा कटि में एक विशेष ढंग से बँधा है, जिससे ऊपर का सारा शरीर ढँक कर शीत से बचा हुआ है। इस वस्त्र के छोर दाहिनी ओर लटक रहे हैं। नीचे के शरीर पर वह श्वेत रंग का कौशेय अधोवस्त्र धारण किये हैं। उसके कानों में कुंडल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर, हाथों में वलय और उँगलियों में मुद्रिकाएँ हैं। सारे आभूषण सुवर्ण के हैं और देदीप्यमान रत्नों से जड़े हुए। इन रत्न-जटित भूषणों के अतिरिक्त गले में लंबी पुष्पमाला है। उसके मस्तक पर केशर का त्रिपुण्ड है। रानी ईशानदेवी का प्रवेश। ईशानदेवी की अवस्था लगभग ६० वर्ष की है। उसका वर्ण हिम के सदृश समान है। ६० वर्ष की अवस्था होने पर भी वह सुन्दर दीख पड़ती है। सिर के लंबे केश एक ओर बँध कर पीछे फैले हुए हैं। जहाँ वे बँधे हुए हैं वहाँ पुष्प गुँथे हुए हैं। उसके शरीर पर नीलवर्ण, कराल वस्त्र की किनारदार साड़ी है, जो पृथ्वी को स्पर्श किये हुए है। उसी प्रकार के वस्त्र का कुर्तक (एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र) साड़ी के भीतर स्कन्धों से लेकर कटि तक लंबा पहने हुए है। उसकी भुजाएँ भी इस वस्त्र से ढँकी हैं। उसके सारे अंग रत्न-जटित आभूषणों से देदीप्यमान हैं। मस्तक पर लाल टिकली और ओष्ठों पर ताम्बूल की लालिमा है। पैरों में लाल अलक्तक लगा है।]

ईशानदेवी—(जालौक के निकट आ) नाथ, भोजन में इतना विलंब!

जालौक—(घूमना बंद कर, खड़े हो) और अभी और भी विलंब होना निश्चित है, प्रिये।

ईशानदेवी—अतिकाल हो रहा है, कोई विशेष कारण है, आर्यपुत्र?

जालौक—(एक पीठ पर बैठते हुए) हाँ, सूचना मिली है कि [illegible] के पथ में एक निराश्रिता भूखी बैठी है। तुम जानती ही हो,

कि धार्मिक अथवा अन्य किसी प्रकार के व्रत के अतिरिक्त यदि कोई भूखा रहता है तो विना उसे तृप्त किये मैं भोजन नहीं करता।

ईशानदेवी—(जो राजा के निकट ही एक दूसरी पीठ पर बैठ गयी है।) सो तो जानती हूँ, नाथ। इस भिखारिणी के अनशन का कोई विशिष्ट कारण है?

जालौक—अब तक पता नहीं लगा। क्षुधा-तृप्ति-विभाग के कायस्थों ने उसे नाना प्रकार के भोजन देने के प्रस्ताव किये, किन्तु उसने भोजन करना अस्वीकृत कर दिया। अब आमात्य गये हैं। मैं उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

[प्रतिहारी का प्रवेश। प्रतिहारी गौरवर्ण की एक युवती है। कम्वल वस्त्र की साड़ी और कुर्तक पहने है, और सुवर्ण के आभूषण धारण किये है। उसकी कटि में चर्म के कमरपट्टे में एक छोटा, किन्तु चौड़ा खड्ग लटक रहा है।]

प्रतिहारी—(अभिवादन कर) जय हो, सर्वाधिकारी महोदय विजयेश्वर के पथ से लौट आये हैं और श्रीमान् के दर्शन के इच्छुक हैं।

जालौक—भेज दो उन्हें, प्रतिहारी।

[प्रतिहारी का प्रस्थान।]

ईशानदेवी—अतिकाल तो हो ही गया, पर अब कदाचित् अधिक विलंब न होगा। (उठते हुए) मैं भोजन की व्यवस्था करती हूँ, आर्य-पुत्र।

जालौक—ठहरो, सुन तो लो, क्या हुआ।

ईशानदेवी—ऐसा? (बैठते हुए) अच्छी बात है।

[मंत्री का प्रवेश। मंत्री की अवस्था लगभग ५५ वर्ष की है। वर्ण गौर है और सिर तथा लंबी मूछों के आधे केश श्वेत हैं। वह ऊपरी अंग

में कम्बल वस्त्र तथा नीचे के अंग में श्वेत सूती अधोवस्त्र धारण किये हैं। कम्बल वस्त्र उसी प्रकार पहने हैं जैसे जालौक। कुंडल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ वह भी पहने हैं। मस्तक पर उसके भी केशर का त्रिपुण्ड लगा हुआ है। भूषण सुवर्ण के रत्नजटित हैं। मंत्री झुक कर राजा और रानी का अभिवादन करता है। दोनों अभिवादन का उत्तर देते हैं।]

जालौक—बैठिए, महत्तम्।

[मंत्री एक पीठ पर बैठता है।]

जालौक—कहिए, क्या हुआ ?

मंत्री—क्या कहूँ, महाराज, विचित्र भिखारिणी है।

जालौक—क्यों, उसने भोजन करना स्वीकार नहीं किया ?

मंत्री—नहीं।

जालौक—क्या कहा ?

मंत्री—अद्भुत बात, श्रीमान्।

जालौक—कैसी ?

मंत्री—वह प्रायोपवेशन कर रही है, किन्तु कोई धार्मिक अथवा धन अर्जन आदि पाने या किसी अन्याय के प्रतिकार लेने का प्रायोपवेशन नहीं।

जालौक—तब ?

मंत्री—उसका प्रायोपवेशन केवल इच्छित भोजन पाने के हेतु है। उसने कहा कि इच्छित भोजन पाये बिना वह अनशन नहीं तोड़ेगी और इच्छित भोजन उसे कोई नहीं दे सकता, कदाचित् आप भी नहीं।

जालौक—वह क्या मांगती है ?

मंत्री—[illegible] है, कहती है आपको ही बता सकती है।

जालौक—[illegible] उसे यहाँ ले आओ।

मंत्री—यह प्रयत्न भी मैंने किया, महाराज।

जालौक—फिर ?

मंत्री—वह अपने आसन से लेशमात्र भी हटने को प्रस्तुत नहीं।

जालौक—अच्छा ! (कुछ विचार कर) तब मुझे विजयेश्वर के पथ पर चलना होगा।

ईशानदेवी—एक भिखारिणी के लिए आप वहाँ जायँगे, आर्यपुत्र ?

जालौक—जाना ही होगा। राज्य में कोई भूखा रहे, इच्छित भोजन पाने पर प्रायोपवेशन छोड़ने को कहे, अपना स्थान भी न छोड़े, तब मेरे जाने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है ? राज्य में किसी के भूखे रहने की सूचना पाने के पश्चात् बिना उसके खाये मैं भोजन कर ही कैसे सकता हूँ ?

ईशानदेवी—परन्तु ऐसी भिखारिणी तो आज पर्यन्त कभी नहीं सुनी, नाथ !

जालौक—जीवन रहते मनुष्य को सदा नवीन नवीन बातों के सुनने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। (मंत्री से) सर्वाधिकारी, शिविका मँगवाइए, मैं विजयेश्वर के पथ पर तत्काल चलूँगा।

मंत्री—(खड़े होते हुए) जैसी आज्ञा। (राजा और रानी का अभिवादन कर प्रस्थान।)

ईशानदेवी—तो अब भोजन का कोई समय निर्धारित नहीं, आर्यपुत्र ?

जालौक—हाँ, जब भी हो। (कुछ ठहर कर, विचार करते हुए) अनेक बार साधारण सी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए भी कदाचित् असाधारण कष्ट सहने पड़ते हैं।

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—विजयेश्वर का पथ

समय—मध्याह्न

[पथ बहुत चौड़ा नहीं है, पर सकरा भी नहीं। मार्ग के एक ओर एक सुन्दर झील का कुछ भाग दिखायी पड़ता है, जिसमें कमल फूले हुए हैं। झील के पीछे ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ हैं। पहाड़ियों पर नाना प्रकार के वृक्ष हैं, जिनमें अनेक भिन्न भिन्न रंगों के पुष्पों से लदे हुए हैं। रंग बिरंगी हो रही पहाड़ियों का प्रतिबिंब झील में पड़ रहा है। पथ के दूसरी ओर सेव, अखरोट, बादाम आदि के वृक्ष हैं, जिनकी शाखाएँ फलों के बोझ से झुक गयी हैं। मार्ग के बीचों बीच एक वृद्ध भिखारिणी बैठी हुई है। वह केवल एक सूती साड़ी पहने है। दुबले, पतले, वृद्ध और भूषणों से रहित होने पर भी भिखारिणी के मुख पर अत्यधिक शान्ति एवं दीप्ति है। झील के किनारे कुछ नागरिक खड़े हैं। सभी ऊपर के अंग पर कम्बल वस्त्र और नीचे के शरीर पर सूती अधोवस्त्र धारण किये हैं। कम्बल वस्त्र उसी प्रकार पहना हुआ है, जिस प्रकार जालौक और मंत्री का था। आभूषण भी पहने हैं। मस्तक पर केशर का त्रिपुण्ड लगाये हैं। सबके पैरों में चर्म के जूते हैं। एक ओर नागरिक का प्रवेश।]

आगन्तुक—(जल्दी से, अन्य नागरिकों से) महाराजाधिराज पधार रहे हैं बन्धुओ।

एक नागरिक—(आश्चर्य से) महाराजाधिराज !

आगन्तुक—हाँ, हाँ, महाराजाधिराज स्वयं।

दूसरा—[illegible] मैंने कहा था कि महा-[illegible]

तीसरा—हाँ, नहीं कैसे आते, प्रतिज्ञा है न, धार्मिक अथवा अन्य किसी प्रकार के व्रत के अतिरिक्त यदि राज्य में कोई भूखा रहता है, तो उसे तृप्त किये विना वे भोजन नहीं करते।

चौथा—सूर्य, सच्चे सूर्य हैं, वे। जिस प्रकार हाथी से ले चींटी तक प्रत्येक प्राणी की क्षुधा तृप्त किये विना सूर्य अस्त नहीं होते, उसी प्रकार हमारे राजा हैं।

छठवाँ—हाँ, युधिष्ठिर हैं, युधिष्ठिर। राज्य की सुव्यवस्था के लिए जिस प्रकार धर्मराज ने अठारह विभागों में शासन का कार्य वाँट, सात सामन्तों को नियुक्त किया था, उसी प्रकार हमारे महाराज ने किया है।

पहला—और फिर सामन्तों पर सारी व्यवस्था छोड़ दी हो, यह नहीं, प्रत्येक सामन्त के कार्य का स्वयं निरीक्षण करते हैं।

चौथा—जीव-वध का निषेध कर अहिंसा की पूर्ण स्थापना के कारण केवल मनुष्य नहीं सृष्टि के समस्त भूतों को सुखी कर दिया है।

दूसरा—और प्राणी मात्र की प्रथम आवश्यकता आहार की कैसी अनुपम व्यवस्था है। कितने कायस्थ नियुक्त हैं इस निरीक्षण के लिए कि कोई क्षुधित न रहे।

तीसरा—अरे ! प्रतिज्ञा ही की है कि एक व्यक्ति भी भूखा रहा तो स्वयं भोजन न करेंगे।

चौथा—(भिखारिणी की ओर देखते हुए) पर विचित्र भिखारिणी है यह। क्षुधा-तृप्ति-विभाग के कायस्थों की वात न मानी, आमात्य की न सुनी और स मध्याह्न में श्रीमान् को पधारना पड़ रहा है।

पाँचवाँ—अव देखें, चाँदी, सोना, हीरे, मोती, पन्ने, माणिक, कौन वस्तु का भोजन माँगती है।

[नेपथ्य में शंखध्वनि होती है।]

आगन्तुक—लो आगये, पधार आये, महाराज।

[नागरिकों में खलवली सी मच जाती है। याष्टिक (चोपदार)

आगे आगे शंख बजाते हुए आता है। उसके पीछे आठ शिविका-वाहकों पर स्वर्ण-मण्डित रत्न-जटित शिविका आती है। शिविका में जालोक बैठा है। शिविका के एक ओर मंत्री चल रहा है और शिविका के पीछे आठ शरीर-रक्षक हैं। याष्टिक श्वेत रंग का कम्बल-वस्त्र का लंबा कंचुक (एक प्रकार का अंगरखा) पहने हुए है। सिर पर श्वेत रंग की पाग है। सुवर्ण के कुंडल, हार, केयूर, वलय, और मुद्रिकाएँ भी पहने हैं। उसकी कमर में एक सुनहरी कमरपट्टा है, जिसमें बाईं ओर सुवर्ण की मूठ का खड्ग लटक रहा है। बाएँ हाथ में वह एक मोटी सुवर्ण की छड़ी लिये हैं और दाहिने हाथ में शंख। शिविका-वाहक ऊपर के अंग में कम्बल-वस्त्र और नीचे के अंग में सूती अधोवस्त्र पहने हैं। शिविका-वाहक भी सुवर्ण के भूषणों से सुसज्जित हैं। जालोक और मंत्री की वेष-भूषा वैसी ही है जैसी राजप्रासाद में थी; इतना ही अंतर है कि अब जालोक के सिर पर रत्नजटित किरीट भी लगा है। शरीर-रक्षक शरीर पर लोह के कवच और सिर पर लोह के ही शिरस्त्राण पहने हैं। वे आयुधों से भी सुसज्जित हैं। उनके बाएँ कंधे पर दीर्घ-काय धनुष है, जिसका ऊपरी सिरा कान और नीचे का सिरा पैरों को छू रहा है। दाहिने कन्धे पर, पीछे, तरकश में बाण हैं। कमरपट्टे के बाईं ओर दो दो खड्ग हैं, एक लंबा, और दूसरा छोटा, किन्तु चौड़ा। कमरपट्टे के दाहिनी ओर परशु और कटार हैं। सब चर्म के जूते पहने हैं। नागरिक राजा को झुक झुक कर अभिवादन करते हैं, जिनका जालोक नम्रतापूर्वक उत्तर देता है। भिखारिणी के निकट पहुँच कर शिविका रखी जाती है। जालोक उतरता है। नागरिक भी निकट आ जाते हैं। जालोक और मंत्री भिखारिणी के निकट जाते हैं। नागरिक कुछ दूर पर खड़े रहते हैं।]

जालोक—(भिखारिणी के मुख की शान्ति और दीप्ति से प्रभावित हो) [illegible] नहीं दिखती [illegible], आपकी शान्तिमय दीप्ति [illegible] और प्रभावित [illegible] है। यह [illegible]

आपको नमन करता है और जानना चाहता है कि आप किस प्रकार का भोजन करेंगी ?

भिखारिणी—ब्राह्मणी होने के कारण मैं आशीर्वाद देती हूँ, राजन्, कि आप हर प्रकार से सुखी रहें। आपका यश चतुर्दिक व्याप्त है, पर मेरे भोजन की बात आप छोड़ दें तो ही अच्छा है।

जालौक—आप कदाचित् नहीं जानतीं, देवि, मेरी प्रतिज्ञा है कि धार्मिक, अथवा अन्य किसी प्रकार के व्रत के अतिरिक्त यदि इस राज्य में कोई भूखा रहता है तो बिना उसे तृप्त किये मैं भोजन ग्रहण नहीं करता।

भिखारिणी—आप धन्य हैं, राजन्, किन्तु....किन्तु....

जालौक—किन्तु परन्तु को एक ओर रख आप निःशंक हो राजप्रासाद पधारें। जो वस्तु भी आप चाहेंगी वही आपको भोजन के लिए अर्पित होगी।

भिखारिणी—(कुछ विचारते हुए, पर शंकित स्वर में) ऐसा ?

जालौक—हाँ, ऐसा ही होगा, देवि। यह जालौक प्रतिज्ञा करता है कि जो भोजन भी आप माँगेंगी वह आपकी सेवा में उपस्थित किया जायगा।

[भिखारिणी खड़ी होती है। याष्टिक शंख बजाता है।]

नागरिक—महाराजाधिराज श्रीमान् जालौक देव की जय।

लघु-यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—राजप्रासाद में अभ्यन्तर-आलय

समय—अपराह्न

[अभ्यंतर-आलय (दीवाने खास) एक विशाल आलय है। भित्तियाँ पाषाण की हैं, जिनमें नाना प्रकार की सुन्दर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। स्थूल-

पाषाण-स्तम्भों पर आलय की छत है। स्तंभों पर सुन्दर खुदाव है। आलय की पृथ्वी पर पाषाण का ही चिकना पटाव है। बीच में रत्न-जटित सुवर्ण का सिंहासन, और उसकी ओर जिनका मुख है, ऐसी रत्नों से जड़ी हुई सुवर्ण की पीठें रखी हैं। सिंहासन और पीठों पर कामदार कौशेय वस्त्र से ढँकी हुई गद्दियाँ बिछी हैं और उन पर तकिये लगे हैं। राजा सिंहासन पर तथा मंत्री और राजगुरु पीठों पर बैठे हुए हैं। राजगुरु वृद्ध ब्राह्मण है; अवस्था ७० वर्ष के लगभग। शिखा, मूछों और दाढ़ी के सारे बाल श्वेत हो गये हैं। शरीर पर श्वेत रंग का मोटा उत्तरीय और वैसा ही अधोवस्त्र धारण है। सारा शरीर भूषणों से रहित है। मस्तक तथा बाहुओं पर भस्म के त्रिपुण्ड लगे हैं। आलय में एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता है। जालौक का सिर झुका हुआ है और वह किसी महान् विचार में निमग्न जान पड़ता है। मंत्री और राजगुरु एकटक राजा की ओर देख रहे हैं।]

जालौक—(धीरे धीरे सिर उठा कर) किन्तु, गुरुदेव एवं महत्तम, मैंने प्रतिज्ञा की है; जो भोजन उसने माँगा है, वह मुझे देना ही होगा, नर-मांस ही मैं उसे दूंगा।

राजगुरु—शास्त्र के अनुसार नर-मांस भोजन की संज्ञा के बाहर है, महाराज, आपने उसे इच्छित भोजन देने की प्रतिज्ञा की है, जो भोजन नहीं है, वह देने की नहीं।

[जालौक फिर सिर झुका कर कुछ विचार करने लगता है। राजगुरु और मंत्री उत्सुकता से जालौक की ओर देखते हैं। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।]

जालौक—(धीरे धीरे फिर सिर उठाकर) क्षमा कीजिए, आर्य, [illegible] नहीं केवल [illegible] जान पड़ता है, नर-मांस कभी [illegible] माना जाता था, [illegible] भ्रम से मुक्त हो [illegible]।

मंत्री—[illegible]

मनुष्य ही नहीं, किन्तु पशु, पक्षी तक की हत्या न होगी। श्रीमान्, आपकी यह घोषणा भी एक प्रकार की प्रतिज्ञा है। इस भिखारिणी को इच्छित भोजन देने की प्रतिज्ञा एक पूर्व प्रतिज्ञा के पश्चात् की प्रतिज्ञा है और उसका पालन पूर्व प्रतिज्ञा की सीमा का उल्लंघन करके नहीं किया जा सकता।

[illegible]

राजगुरु--विना हत्या के नर-मांस कहाँ से आयगा, महाराज ?

मंत्री--हाँ, अहिंसा की घोषणा की रक्षा होते हुए नर-मांस कैसे आ सकता है, श्रीमान् ?

जालौक--आप लोगों को राजा शिवि और कपोत का उपाख्यान स्मरण नहीं है ? मैं भिखारिणी को अपना मांस दूँगा।

मंत्री--(अत्यधिक आश्चर्य से स्तंभित हो चिल्ला कर) महाराज !

राजगुरु--(मंत्री के सदृश ही मुद्रा और स्वर से) श्रीमान् ! (कुछ रुककर) और....और, महाराज, यह....यह भी तो हिंसा होगी, दूसरे की नहीं, अपनी सही, परन्तु हिंसा तो होगी ही।

[जालौक फिर सिर झुका कर विचार-मग्न हो जाता है। मंत्री और राजगुरु उसकी ओर एकटक देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

जालौक--मैं तो नहीं समझता, गुरुदेव, कि यह हिंसा होगी। यह हिंसा नहीं, वलिदान है। हिंसा और वलिदान में तो अंतर....महान् अन्तर है, आर्य। वलात् किसी का वध हिंसा है, अपना वध भी यदि क्रोध, दुःख, ग्लानि आदि के आवेश में आकर, अथवा किसी क्लेश-मुक्ति के लिए किया जाय, तो भी वह हिंसा ही है, किन्तु जहाँ क्रोध, दुःख, ग्लानि आदि न हों, क्लेश-मुक्ति का प्रश्न न हो, किन्तु सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिए अपना शरीर अर्पण होता हो, वहाँ...वहाँ तो, गुरुदेव, वह हिंसा नहीं हो सकती, वह वलिदान....सच्चा वलिदान ही होगा।

मैंने ही की थी। भिखारिणी को उसकी च्छानुसार भोजन देने की प्रतिज्ञा मैंने की है। (दृढ़ता से) उसकी नर-मांस-भक्षण की इच्छा की पूर्ति मेरे मांस से ही होगी, केवल मेरे मांस से।

[प्रसन्न जालौक खड़ा होता है। दुखी मंत्री और राजगुरु भी उठते हैं।]

लघु-यवनिका

चौथा दृश्य

स्थान—श्रीनगर का एक मार्ग

समय—अपराह्न

[सकरा सा मार्ग है। दूर पर वितास्ता नदी तथा उसके किनारे की पुष्पों से युक्त रंग विरंगी सुन्दर वृक्षावली दृष्टिगोचर होती है। मार्ग के उभय ओर एक-एक, दो-दो, तीन-तीन, खण्ड के गृह हैं। गृहों की बनावट में बौद्ध-शिल्प-कला दृष्टिगोचर होती है। दूर दूर पर पर्वत-श्रेणियाँ दिख पड़ती हैं। दाहिनी ओर से जल्दी जल्दी कुछ नागरिक आ रहे हैं और बाईं ओर से साधारण चाल में कुछ नागरिक। सब की वेष-भूषा विजयेश्वर के पथ पर के नागरिकों के सदृश ही है।]

बाईं ओर से आने वाला एक—(दाहिनी ओर से आने वाले एक नागरिक से) बन्धु मित्रगुप्त, कहाँ, इतनी जल्दी जल्दी कहाँ जा रहे हो ?

दाहिनी ओर से आने वाला एक—(ठहर कर, उसके ठहर जाने से सब ठहर जाते हैं।) राजप्रासाद को, बन्धु, तुमने सुना नहीं वहाँ एक अभूतपूर्व अनर्थ होने जा रहा है।

बाईं ओर से आने वाला वही—(कुछ आश्चर्य से) कैसा ?

दाहिनी ओर से आने वाला वही—ब्योरेवार वृत्त सुनाने का तो

अवकाश नहीं, पर थोड़े में बता देता हूँ। विजयेश्वर के पथ पर एक भिखारिणी प्रायोपवेशन किये बैठी थी। जब क्षुधा-तृप्ति-विभाग के अध्यक्ष तथा पानालय के कथन पर भी उसने भोजन ग्रहण नहीं किया तब स्वयं महाराजाधिराज वहाँ पधारे और उसे इच्छित भोजन देने की प्रतिज्ञा कर राजप्रासाद को ले आये। भिखारिणी ने नर-मांस माँगा। अहिंसा की दीक्षा के कारण श्रीमान् अपना मांस उसे देने वाले हैं।

बाईं ओर से आने वाले अनेक—(अत्यन्त आश्चर्य से) हैं! हैं! [illegible] अनर्थ!

दाहिनी ओर से आने वाला वही—(लंबी साँस लेकर) कुछ पूछो मत; हम सब इस अनर्थ को रोकने का प्रयत्न करने जा रहे हैं।

बाईं ओर से आने वाला दूसरा—आप इसे कैसे रोकेंगे, बन्धु, हम भी क्या कोई सहायता कर सकते हैं?

दाहिनी ओर से आने वाला वही—हम सब स्वयं अपना अपना मांस देकर श्रीमान् की रक्षा करेंगे। उनकी दोनों प्रतिज्ञाएं सत्य रहेंगी। हम स्वयं अपना मांस देंगे, इसलिए अहिंसा में बाधा नहीं पहुँचेगी और उस नर-मांस-भक्षिणी भिखारिणी को नर-मांस भी मिल जायगा।

दाहिनी ओर से आने वाले अनेक—हाँ, सब...सब के सब।

दाहिनी ओर से आने वाला दूसरा—देखें, वह दानवी कितना नर-मांस खाती है।

एक--(जाते जाते) ऐसा नरेश कभी न हुआ।

दूसरा--न्याय-परायण।

तीसरा--प्रजा-पालक।

चौथा--दृढ़-प्रतिज्ञ।

पाँचवाँ--सत्यवादी।

छठवाँ--अहिंसक।

वहुत से--(एक साथ) महाराजाधिराज श्रीमान् जालौक देव की जय।

सब--महाराजाधिराज श्रीमान् जालौक देव की जय।

लघु-यवनिका

पाँचवाँ दृश्य

स्थान--राजप्रासाद का निवास-कक्ष

समय--अपराह्न

[वही कक्ष है, जो प्रथम दृश्य में था। अकेला जालौक खड़ा हुआ खड्ग को कोष से निकाल उसकी धार देख रहा है। उसका मुख प्रसन्नता और उत्साह से चमक रहा है। जल्दी जल्दी ईशानदेवी का प्रवेश। उसका मुख अत्यन्त म्लान है और उस पर ऐसी घवराहट के चिह्न दिख पड़ते हैं, जो केवल मृत्यु के समय ही दृष्टिगोचर होते हैं।]

ईशानदेवी--(अत्यधिक भर्राये हुए स्वर में) आर्यपुत्र...आर्यपुत्र, यह...यह मैं क्या...क्या सुन रही हूँ?

जालौक--(प्रसन्नता से) जो तुमने सुना, वह सत्य है, प्रिये, तुम्हारा यह बड़भागी पति सीधे स्वर्ग को जारहा है।

ईशानदेवी—यह नाथ ... क्या... क्या कहते हैं, नाथ, मेरे...मेरे रहते आप यह...यह न कर सकेंगे, कदापि नहीं।

जालौक—क्षत्राणी होकर, वीरपत्नी होकर तुम पति की प्रतिज्ञा-पूर्ति में बाधक होगी, देवि!

ईशानदेवी—नहीं... नहीं, आर्यपुत्र, आप... आपकी प्रतिज्ञा मेरे... मेरे मांस से पूर्ण होगी।

जालौक—तब मेरी अहिंसा की घोषणा मिथ्या हो जायगी।

ईशानदेवी—मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी...अर्द्धाङ्गिनी हूं, प्राणेश, [illegible] मांस का भोग किया जाता है, यह...यह तो...

जालौक—(बीच ही में) प्राणेश्वरी, यह तर्क है, केवल तर्क। [illegible] तुम्हारे लिए बलिदान होगा, किन्तु मेरे लिए वह [illegible]। इस प्रकार की समस्याओं का निराकरण केवल तर्क [illegible] विशेष प्रकार की सूक्ष्म दृष्टि से ही करना पड़ता है। [illegible] मेरे राज्य में हिंसा न होगी। भिखारिणी को इच्छित [illegible] की मैंने प्रतिज्ञा की है। वह नर-मांस चाहती है। बिना किसी [illegible] अपना मांस देकर, मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूंगा।

ईशानदेवी—(जिसके अब आंसू बह रहे हैं) नाथ... नाथ...

जालौक—(कुछ रुककर, विचारते हुए) हाँ, इस...इसका तुम्हें अधिकार है।

लघु-यवनिका

छठवाँ दृश्य

स्थान—राजप्रासाद का वाह्यालय

समय—सन्ध्या के निकट

[वाह्यालय (दीवाने आम) अत्यन्त विशाल आलय है। इसकी बनावट अभ्यंतर-आलय के सदृश ही है, पर उससे यह बहुत बड़ा है। इसके अतिरिक्त इसके एक ओर चैत्य का कुछ भाग दिखायी पड़ता है। आलय के बीचों बीच सुवर्ण का रत्न-जटित सिंहासन है और उसके सामने पीठें हैं। दाहिनी ओर स्त्रियों के बैठने का पृथक् स्थान है। जालौक सिंहासन पर विराजमान है। एक युवती जालौक पर कौशेय वस्त्र का श्वेत छत्र लगाये है और दो युवतियाँ श्वेत सुरा गाय की पूँछ का चमर डुला रही हैं। सिंहासन के दाहिनी ओर एक पीठ पर भिखारिणी बैठी है। स्त्रियों के बैठने के स्थान पर ईशानदेवी अनेक स्त्रियों के साथ विराज रही हैं। सामने की पीठ पर राजपुत्र (राजा के नातेदार आदि), मंत्री, राजगुरु, और अनेक सामन्तगण हैं। चैत्य में नागरिकों की भीड़ है। जालौक भाषण दे रहा है।]

जालौक—अगणित प्रजाजन का अपने प्रति ऐसा अपूर्व स्नेह देख किस राजा का हृदय आनन्द से गद्गद् न हो जायगा ? सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को जितना प्रिय अपना शरीर है, उतनी अन्य कोई वस्तु नहीं। किसी अन्य की रक्षा के लिए अगणित ने स्वत: अपने अपने शरीरों के बलिदान की ऐसी इच्छा...ऐसी आतुरता कदाचित् कभी भी प्रदर्शित न की होगी।

किन्तु मुझे खेद है कि मैं आप लोगों की इच्छा पूर्ण करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता हूँ। आपके बलिदान से मेरी नर-मांस देने की प्रतिज्ञा अवश्य पूर्ण हो जायगी, मेरा यह शरीर भी बच जायगा, किन्तु मेरी अहिंसा की घोषणा भंग हो जायगी। आप अपने शरीर का बलिदान देंगे, आपके लिए वह हिंसा नहीं, परन्तु आपके लिए जो बलिदान होगा, मेरे लिए वही हिंसा होगी। प्रतिज्ञा-पूर्ति मेरी होना है, वह आपके मांस से हो, यह कैसे हो सकता है? **(कुछ ठहर कर)** भगवान् कदाचित् आज मेरी अहिंसा की परीक्षा ले रहे हैं; वे कदाचित् प्रतिज्ञा-पालन में मेरी क्षमता की जाँच कर रहे हैं। मुझे अनुत्तीर्ण न होने दीजिए। यदि मुझ पर आप-सबका ऐसा प्रेम है, ऐसा अगाध स्नेह है, तो वह मुझ. . .सच्चे मुझ पर हो, मेरे नाशवान शरीर पर नहीं। इस समय इस नाशवान शरीर की रक्षा में सच्चे धर्म का नाश होता है। प्रतिज्ञा के अपालन से बड़ा अन्य कोई पाप नहीं; और उसे पूर्ण करने के लिए ऐसे साधनों का आश्रय, जो सत्य पर अवलंबित न हो, तर्क के प्रकाश में सत्य दिखते हों, सत्य के स्थान पर मिथ्या का आश्रय लेना है। **(कुछ रुक कर)** मुझे विश्वास है कि जिस जन को आपने निष्पाप, सत्यवादी, अहिंसक, धर्मात्मा इत्यादि विशेषणों से संबोधित किया है, उसे पापी, मिथ्या-भाषी, हिंसक और धर्मच्युत न बनायँगे। **(एकाएक खड़े हो, खड्ग उठा, भिखारिणी की ओर घूम)** देवि, जालौक सहर्ष अपना मांस आपके आहार के लिए देता है। **(सब अत्यधिक क्रूर दृष्टि से भिखारिणी की ओर देखते हैं।)** आप मेरे एक-एक अंग को लेती जायँ।

[ज्योंही जालौक दाहिने हाथ से अपनी वाम भुजा पर प्रहार करने लगता है, त्योंही भिखारिणी लपक कर उसका हाथ पकड़ लेती है।]

भिखारिणी—धन्य, राजन्! आपको धन्य है! हो गया। मैं तृप्त हो गयी। आपने विश्व में सिद्ध कर दिया कि आप सच्चे राजा, सच्चे सत्यवादी, सच्चे अहिंसक और सच्चे धर्मात्मा हैं।

[सब चौंक पड़ते हैं। एकाएक शोक के स्थान पर प्रत्येक मुख हर्ष से प्रदीप्त हो उठता है। आनन्द का सागर सा उमड़ आता है और जय-जयकार की ध्वनि से कानों के परदे फटने लगते हैं।]

यवनिका

- समाप्त

चन्द्रापीड़ और चर्मकार

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र—

चन्द्रापीड़—काश्मीर का राजा
प्रकाशदेवी—चन्द्रापीड़ की रानी
चलितक—चन्द्रापीड़ का मंत्री
मिहिरदत्त—चन्द्रापीड़ का गुरु
रैदास—एक चर्मकार
यशोदा—रैदास की पत्नी
बिहारी—रैदास का पुत्र
राधा—रैदास की पुत्री
नृसिंह वर्मा
परशुराम } —राज कर्मचारी
आदित्य शर्मा—एक ब्राह्मण युवक

स्थान—काश्मीर
समय—सन् ६८० और ६८८ ई० के बीच

पहला दृश्य

स्थान—काश्मीर में श्रीनगर के बाहर की पर्वत-मालाओं से घिरी हुई एक समतल-भूमि

समय—उषः काल

[इस समतल-भूमि के पीछे की ओर, दूर पर, ऊँची ऊँची पर्वत-मालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनके ऊपरी भाग हिम से आच्छादित हैं। आकाश में उषा का सुनहरी प्रकाश फैल गया है, जिसके प्रतिबिंब के कारण यह श्वेत हिम सुनहरी हेम सा चमक रहा है। हिमाच्छादित शिखरों के नीचे का पर्वत-प्रदेश वृक्षों से भरा हुआ है। इन वृक्षों में अधिकतर चिनार-तरु हैं। अनेक वृक्ष पुष्पित और फलित भी हैं, जिनसे इस प्रदेश को भिन्न भिन्न चटकीले रंगों का सौंदर्य प्राप्त हो गया है। समतल-भूमि के दाहिनी ओर त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर का निर्माण हो रहा है। नींव खुद रही है, पाषाण गढ़ा जा रहा है। अभी काम करने वाले नहीं आये हैं। भूमि के बाईं ओर रैदास के छोटे से झोपड़े का कुछ भाग दिखायी पड़ता है। झोपड़े के बाहर पंक्ति में रखे हुए अनेक चर्म सूख रहे हैं; कुछ डोरियों पर टँगे भी हैं। त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर की नींव रैदास के झोपड़े के बहुत निकट तक आ गयी है। झोपड़े के भीतर से गान की ध्वनि आ रही है।]

गान।

प्रभु, मोरे अवगुन चित न धरो।
सम दरशी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो॥

इक नदिया इक नार कहावत, मैलो हि नीर भरो।
जब मिल करके एक बरन भये, सुरसरि नाम परचो ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक धरचो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवत, कंचन करत खरो ॥[1]

[गान बंद हो जाता है और झोपड़े से रैदास तथा यशोदा निकल हैं। रैदास की अवस्था ४५ वर्ष के लगभग है। वह गेहुँए रंग औ साधारण उँचाई का दुबला पतला मनुष्य है। उसके सिर पर लंबे बा और दाढ़ी मूछें हैं। बाल इधर उधर से श्वेत हो चले हैं। ऊपर का शरी मोटे और खुरदरे कम्बल वस्त्र (एक प्रकार का ऊनी कपड़ा) से ढक हैं। यह वस्त्र भुजाओं के नीचे पसवाड़ों तथा कटि में एक विशेष ढंग बांधा गया है, जिससे सारा शरीर ढँक गया है। वस्त्र के छोर दाहिने ओर लटक रहे हैं। नीचे के अंग में वह मोटा सूती अधोवस्त्र पह है। यशोदा लगभग ४० वर्ष की, गेहुँए रंग की, ठिगनी और कुछ मोट स्त्री है। कुरूप नहीं। वह कम्बल वस्त्र की एक मोटी और खुरदरी सं साड़ी पहने हैं। साड़ी के भीतर वैसे ही वस्त्र का कुर्तक (एक विशे प्रकार का सिला हुआ वस्त्र) धारण किये है। कुर्तक स्कन्धों से कटि तक लंबा तथा बाहों से युक्त है। उसके लंबे केश एक ओर बँध क पीठ पर फैले हुए हैं।]

रैदास—आज अन्तिम बार तुम्हारा यह मधुर गान सुन लिया प्रिये। कायस्थ आते ही होंगे। (मन्दिर की नींव को देखते हुए) यह नींव आज आगे खुदेगी ही, इसी के साथ (अपने झोपड़े की ओर घूम लंबी साँस ले) खुद जायगा हमारा यह झोपड़ा और इसी झोपड़े के संग खुद जायँगे हमारे सारे अंग और प्रत्यंग।

---

[1] महाकवि सूरदास कृत

[रैदास चुप हो एक निराश-दृष्टि से अपने झोपड़े की ओर देखता और वारवार लंबी साँसें लेता है। यशोदा कभी मन्दिर के निर्माण होते हुए पाषाणों, कभी मन्दिर की नींव और कभी अपने झोपड़े की ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

यशोदा--(लंबी साँस लेकर) हर्ष इसी वात का है, नाथ, कि हमें एक दूसरे की वियोग-वह्नि न सहनी होगी। (कुछ रुककर) आप एक वात जानते हैं ?

रैदास--(यशोदा की ओर देख) क्या, प्रिये ?

यशोदा--उच्च वर्ण वाले आर्यो के साथ जव मैं उनकी पत्नियों को सती होते देखती थी तव मेरे मन में क्या उठता था ?

रैदास--(रूखी मुस्कराहट के साथ) यही न कि यदि मैं पहले चल वसा तो तुम भी मेरे संग सती होगी।

यशोदा--हाँ, नाथ, हमारे वर्ण में यद्यपि पत्नी पति के साथ सती नहीं होती, पर आपके विना मैं जीवित रहने की कल्पना तक नहीं कर सकती। हर्ष की वात है कि हम दोनों साथ साथ चलेंगे।

रैदास--और वह अपने स्वत्वों तथा अपने वर्ण के सम्मान में, मेरे जन्म-स्थल तथा तुम्हारे पति-गृह की रक्षा के महान् कार्य में, अपनी वलि देकर।

[दोनों एकटक अपने झोपड़े को देखते हैं। कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

यशोदा--(झोपड़े को देखते हुए) नाथ, यह केवल आपका जन्म-स्थल और मेरा पति-गृह ही नहीं है। यहीं विहारी का जन्म हुआ, यहीं राधा जन्मी। वे छोटे से वड़े यहीं हुए। इसके भीतर वैठी हुई मैं जव उन्हें दूध पिलाती तव उनके मुस्कराते हुए मुखड़ों से इसकी मैली कुचैली भित्तियों पर भी एक विचित्र रंग सा छा जाता था। जव वे घुटनों से चल चल कर किलकते तव इसका छप्पर भी वोल सा उठता था। धूप, वर्षा, शीत से

इसीने तो उन नन्हें नन्हें बच्चों की रक्षा की। कठिन परिश्रम के पश्चात् आपको भी यही तो विश्राम देता है।

रैदास—(**झोपड़े को देखते हुए**) और मैं तथा ये बच्चे ही नहीं, मेरे पिता, मेरे दादा, मेरे परदादा सभी यहीं जन्मे, प्रिये, यहीं बड़े हुए। सब यहीं खेले, सब ने यहीं कार्य किया। तुम्हारे सदृश मेरी माता, मेरी दादी, मेरी परदादी सब यहीं आयीं; विविध स्वर के वाद्यों के साथ, भिन्न भिन्न प्रकार के गायनों के संग।

[दोनों चुप होकर कुछ देर फिर झोपड़े को देखते हैं। पुनः निस्तब्धता।]

यशोदा—(**धीरे धीरे मन्दिर की नींव की ओर घूम, उसे देखते हुए**) एक बात पूछूँ, प्राणेश ?

रैदास—(**यशोदा की ओर देख**) क्या, प्रिये ?

यशोदा—(**नींव को ही देखते हुए**) हमारा झोपड़ा हमारे लिए प्रिय है, महत्त्व का है, परन्तु यह मन्दिर, त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर, भगवान् का मन्दिर तो.... (**चुप हो रैदास की ओर देखने लगती है।**)

रैदास—(**मन्दिर की नींव की ओर देख**) होगा, मन्दिर के निर्माण-कर्ताओं के त्रिभुवन के लिए यह प्रिय होगा, महत्त्वशाली होगा, पर हमें इस से प्रयोजन ? उनके और हमारे भगवान् एक होते हुए भी हम उनके त्रिभुवन से पृथक् हैं, पतित हैं। उस त्रिभुवन पर हमारी छाया तक नहीं पड़ सकती, यदि पड़ जाय तो वह अपवित्र हो जाता है और वेद-ध्वनि के संग वितास्ता के पवित्र नीर से धुलने के पश्चात् ही उसकी पवित्रता लौट सकती है; ऐसी ध्वनि जिसे करने का ही नहीं, सुनने का भी हमें अधिकार नहीं। न हमें इस उच्च वर्ण के त्रिभुवन से प्रयोजन, न इनके स्वामिन् के मन्दिर से। इसके बनने के पश्चात् क्या हम इसमें प्रवेश करने का साहस कर सकते हैं ? इसमें प्रवेश कर इसके देवता त्रिभुवन स्वामिन् का पूजन तो दूर रहा, उनके दर्शन की धृष्टता भी कभी

हमसे हो सकती है ? (अपने झोपड़े की ओर देखते हुए) हमारे लिए हमारा यह झोपड़ा ही सर्वस्व है। यही हमारी जन्मभूमि है। यही हमारा निवास-स्थल है। यही हमारा कार्यालय है, यही हमारा विश्रामालय। यही हमारा मन्दिर है, यही हमारा पूजा और प्रार्थना-गृह। यहीं हम रहते हैं और यहीं हमारे भगवान्।

यशोदा—(झोपड़े की ओर देखकर) हाँ, नाथ, आप ठीक, सर्वथा ठीक कहते हैं। इसी अपने झोपड़े में ही तो मैं भगवान् केशव का पूजन करती हूँ, उन्हें भोग लगाती हूँ।

रैदास—भगवान् केशव और त्रिभुवन स्वामी में कोई अन्तर नहीं, प्रिये, पर इस उच्च वर्ण ने अपने त्रिभुवन में त्रिभुवन स्वामी को जो बन्दी बना रखा है। (कुछ ठहर कर सोचते हुए) और एक बात जानती हो ?

यशोदा—क्या, नाथ ?

रैदास—यथार्थ में यह भगवान् का मन्दिर नहीं बन रहा है, पर भगवान् के मन्दिर के नाम पर हमारी जड़ खोदी जा रही है।

यशोदा—कैसे ?

रैदास—राज्य में बहुत स्थान था; जानती हो, यहीं मन्दिर क्यों बन रहा है ?

यशोदा—क्यों ?

रैदास—इसलिए कि श्रीनगर इस ओर बढ़ रहा है। हम अस्पृश्य ठहरे। हम नगर के निकट, उसके आसपास, उसके अड़ोस-पड़ोस में भी न रहें, इसके लिए यह उच्च वर्ग का षड्यन्त्र है। मन्दिर के नाम हमारी धार्मिक भावनाओं को उभाड़ कर, हमें यहाँ से निकाल, दूर पर किसी पहाड़ी या वन में बसा देने के लिए मन्दिर की रचना हो रही है। हमें अधिक भूमि देने, अच्छा गृह बनवाने, प्रचुर धन देने का लोभ दिया जा रहा है। हमारे जाति-बन्धु इस लोभ में फँस भी गये, परन्तु मनुष्य वन या पहाड़ पर

रहने वाला पशु नहीं; वह समाज में रहने वाला प्राणी है। उस भूमि, उस गृह से हमें क्या लाभ, जहाँ हमें मनुष्य का मुख भी न दिखे ? जहाँ से नित्य के उपयोग की वस्तुएँ ही नहीं. पर रोग के समय औषधि लाने के लिए भी हमें कोसों चलना पड़े। जहाँ हमारे बालक पशुओं के बच्चों के साथ खेल मनुष्य नहीं, पशु बनें। आह! मनुष्य का मनुष्य के साथ यह कैसा व्यवहार! मनुष्य का मनुष्य द्वारा यह कैसा बहिष्कार! मनुष्य का मनुष्य के प्रति यह कैसा अत्याचार! हम मनुष्य होने पर भी मनुष्य के संग रहने योग्य नहीं। हमारी छाया तक स्पर्श के योग्य नहीं। (कुछ रुककर) प्रिये, इस प्रकार के जीवन से मृत्यु भली...कहीं भली है। हमारे अन्य बन्धु यहाँ से हट गये, पर हम न हटेंगे, कदापि नहीं।

यशोदा--(**गद्गद् स्वर से**) आप यथार्थ में ठीक कह रहे हैं, प्राणेश। यह त्रिभुवन स्वामी का नहीं, भगवान् का नहीं, उच्च वर्ण का मन्दिर है। राजा भी उसी वर्ग का है, चाहे वह कितना भी न्यायी क्यों न हो; और इसीलिए जिस राज्य-सत्ता का उपयोग सब वर्णों के समान हित के लिए होना चाहिए, उसका उपयोग हमारे दमन के लिए किया जा रहा है। चाहे हमारे अन्य बान्धवों ने इसे सह लिया हो पर हम इसे कदापि न सहेंगे। (**झोपड़े की ओर देखते हुए**) यही हमारा सब कुछ, यही हमारा सर्वस्व है।

रैदास--(साहस से) और इसकी रक्षा में अपने सब कुछ, अपने सर्वस्व की आहुति देने को हम प्रस्तुत हैं।

[बिहारी और राधा का झोपड़े से बाहर प्रवेश। बिहारी की अवस्था लगभग १६ वर्ष और राधा की १३ वर्ष की है। दोनों गेहुँए रंग के साधारणतया सुन्दर बालक हैं। बिहारी की वेष-भूषा रैदास और राधा की यशोदा के सदृश है।]

बिहारी--और, पिताजी, मैं...मै भी अपने सब कुछ, अपने सर्वस्व की आहुति अपने जन्म-स्थल की रक्षा के हेतु दे दूँगा।

राधा—और मैं...मैं भी, माँ,...

[नृसिंह वर्मा और परशुराम का प्रवेश। नृसिंह वर्मा की अवस्था लगभग ५० वर्ष और परशुराम की लगभग ३० वर्ष की है। दोनों गौर वर्ण के, ऊँचे-पूरे तथा गठे हुए शरीर के व्यक्ति हैं। वस्त्र रैदास के सदृश ही पहने हुए हैं, किन्तु इनके ऊपर और नीचे के अंगों के वस्त्र रैदास के वस्त्रों के सदृश मोटे और खुरदरे नहीं; वे मूल्यवान होने के कारण चिकने और चमकीले हैं। दोनों की कटि में चर्म का कमरपट्टा है और उसमें वाईं ओर खड्ग लटक रहा है। दोनों कानों में कुण्डल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर हाथों में वलय और उंगलियों में मुद्रिकाएँ धारण किये हुए हैं। सब भूषण सुवर्ण के हैं। रैदास सकुटुंब सिर झुका, हाथ जोड़, उनका अभिवादन करता है; दोनों केवल सिर झुका उत्तर देते हैं।]

नृसिंह वर्मा—(रैदास आदि की छाया न पड़ जाय, इस ढंग से खड़े होते हुए) कहो, रैदास, क्या निर्णय किया? आज तुम्हें अन्तिम अवसर है।

रैदास—मुझे कोई नया निर्णय नहीं करना है, श्रीमान्।

परशुराम—(नृसिंह वर्मा के सदृश ही सावधानी से खड़े होते हुए, क्रोध से) यह तुम्हारा हठ है, घृणित हठ।

रैदास—आप जो चाहें सो समझ सकते हैं।

नृसिंह वर्मा—(धैर्य से) देखो, रैदास, तुम भूल, भयानक भूल कर रहे हो। यहाँ जितनी भूमि पर तुम्हारा अधिकार है, उससे कहीं अधिक भूमि तुम्हें दूसरे स्थल पर मिल जायगी। इस कच्चे झोपड़े के स्थान पर तुम्हारे लिए राज्य-व्यय से पक्का गृह वन जायगा। तुम्हारे व्यापार की वृद्धि के लिए तुम्हें राज्य-कोप से प्रचुर धन दिया जायगा।

रैदास—ठीक कहते हैं, श्रीमान्, (झोपड़े की ओर देखते हुए) किन्तु ...किन्तु (चुप हो जाता है।)

नृसिंह वर्मा—किन्तु क्या, चुप क्यों हो गये ?

परशुराम—(**कुछ धैर्य से**) हाँ, हाँ, कहो न ? जो कुछ कहना हो कहो ।

रैंदास—(**झोपड़े की ओर ही देखते हुए**) आप...आप लोग उसे समझ न सकेंगे, श्रीमान् ।

नृसिंह वर्मा—क्यों नहीं समझेंगे; तुम कहो न ? हम तुम्हारी बात समझने का प्रयत्न करें और तुम हमारी ।

परशुराम—हाँ, झगड़ा तो तभी मिट सकेगा ।

रैदास—(**दोनों की ओर देखते हुए**) आप हमें यहाँ से अधिक भूमि दे देंगे, कच्चे झोपड़े के स्थान पर पक्का गृह बना देंगे, परन्तु... परन्तु (**झोपड़े की ओर देखते हुए**) वह भूमि मेरी जन्मभूमि न होगी, उस गृह की भित्तियों पर मेरा और मेरे कुटुम्ब का इतिहास...छोटा मोटा...टूटा फुटा...सुख दुख का...प्रेम कलह का...जीवन मरण का इतिहास कहाँ से आयगा ? उसके छप्पर के एक एक तिनके...

नृसिंह वर्मा—(**बीच ही में**) परन्तु तुम भूल कर रहे हो, रैदास । मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने और अपने कुटुम्ब को धर्म के लिए बलिदान कर दे ? यहाँ त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर बन रहा है । तुम्हारी जाति के अन्य सभी व्यक्तियों ने यह बलिदान सहर्ष किया है । फिर तुम्हें तो यथार्थ में कोई बलिदान भी नहीं करना पड़ता । जो दोगे उससे कहीं अधिक मिल जायगा । मन्दिर के लिए अपना गृह और भूमि देने मे यह लोक और परलोक दोनों सुधर जायँगे ।

रैंदास—श्रीमान्, परलोक में स्वर्ग तो हमें मिल नहीं सकता, हम चर्मकार, अस्पृश्य हैं । इस लोक में (**अपना झोपड़ा देखते हुए**) यही हमारा स्वर्ग, यही हमारा सर्वस्व है ।

नृसिंह वर्मा—तब तो तुम हठ, वृथा का हठ कर रहे हो ।

रैंदास—मैंने कहा न, आप लोग मेरा कथन समझ नहीं सकते ।

परशुराम—(क्रोध से) समझते, भली भाँति समझते हैं, रैदास, और अपनी बात तुम्हें समझा देने की शक्ति भी रखते हैं; समझे ? अब तक तो अधिक भूमि पा जाते, अच्छा गृह बन जाता, प्रचुर धन प्राप्त हो जाता, अब...अब कुछ न मिलेगा, एक वस्तु भी नहीं, और घड़ी भर के भीतर इस झोपड़े की एक एक ईंट धूल बना दी जायगी; इसके छप्पर का एक एक तिनका भस्म कर दिया जायगा।

रैदास—(दृढ़ता से) किन्तु इसके पहले आपको एक नहीं चार प्राणियों की अस्थियों की धूल बनानी पड़ेगी, मांस, रुधिर, और त्वचा को भस्म करना पड़ेगा।

यशोदा—केवल पुरुष की अस्थियाँ नहीं, पुरुष का मांस, रुधिर और त्वचा नहीं, स्त्री की भी अस्थियाँ, उसका भी रुधिर, मांस और त्वचा।

बिहारी—बालक तक...

राधा—बालिका...

परशुराम—(और क्रोध से) ऐसा...ऐसा !...तो तुम लोगों ने राजाज्ञा का इस प्रकार उल्लंघन करने का संकल्प किया है।

रैदास—(और दृढ़ता से) और उसका फल पाने का भी, श्रीमान्।

परशुराम—(दाँत पीस कर) नीच ! अधम ! अस्पृश्य ! धर्म...

नृसिंह वर्मा—(बीच ही में) चुप...चुप, परशुराम, हमें नीच के संग नीच नहीं होना है। (परशुराम का हाथ पकड़) चलो, हमने समझाने बुझाने का अपना कर्तव्य पालन कर दिया। हम सारा वृत्त परम-भट्टारक से निवेदन कर देते हैं। जो कुछ वे आज्ञा देंगे उसका पालन करेंगे। (जाते जाते रुक कर, रैदास की ओर देख) देखो, रैदास, अभी ...अभी भी अवसर है, फिर हमारे हाथ में कुछ भी न रहेगा। यह झोपड़ा जायगा, भूमि जायगी, सर्वस्व जायगा, और परिवर्तन में भी कुछ प्राप्त न होगा।

रैदास—इतना ही नहीं, श्रीमान्, इसके साथ चार शरीर भी जायँगे।

परशुराम--(क्रोध से गरजते हुए) कभी नहीं, झोपड़े के साथ मरने का भी तुम्हें सौभाग्य प्राप्त न हो सकेगा। तुम सब सड़ोगे कारागृह में।

रैदास--कोई हानि नहीं, श्रीमान्, वहाँ प्रायोपवेशन की शरण ले लेंगे।

परशुराम--(दाँत पीस कर) ओह! छू नहीं सकता, नहीं तो यहीं ढेर...

नृसिंह वर्मा--(जाते जाते) चलो, चलो, चलो।

[नृसिंह वर्मा और परशुराम का प्रस्थान। रैदास, यशोदा, बिहारी और राधा चारों उसी ओर देखते हैं। हिमाच्छादित पर्वत शिखरों के पीछे से धीरे धीरे सूर्योदय हो रहा है।]

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान--श्रीनगर में राजप्रासाद का एक निवास-कक्ष

समय--प्रातःकाल

[कक्ष की भित्तियाँ नीले तैल रंग से रँगी हुई हैं और उन पर चित्रकारी है। द्वारों की चौखटों पर खुदाव और कपाटों में जाली है। खुले हुए द्वारों से दूर पर हिमाच्छादित चोटियों वाली पर्वत-मालाएँ दीखती हैं, जिनके नीचे के शिखर चिनार एवं अन्य प्रकार के वृक्षों से हरित हो रहे हैं। अनेक वृक्ष पुष्पावली से ढँके हैं, जिनके कारण इस हरे रंग के बीच बीच में अन्य अनेक रंग दृष्टिगोचर होते हैं। कक्ष की छत को काष्ठ के स्थूल-स्तम्भ उठाए हुए हैं, जिन पर खुदाव है। कक्ष की पृथ्वी पर मोटे कम्बल वस्त्र की कामदार बिछावन बिछी है। इस पर सुवर्ण-मंडित तथा

रत्नों से जड़ा हुआ 'शयन' (एक प्रकार का सोफा) और इसी प्रकार की सोने से मढ़ी एवं रत्नों से जड़ी 'आसंदियाँ' (एक प्रकार की कुर्सियाँ) सजी हैं। शयन और आसंदियों पर कामदार कौशेय वस्त्र से ढँकी हुई गद्दियाँ बिछीं और उनपर तकिये लगे हैं। रजत-मंडित कुछ चौकियों (एक प्रकार की टेबिलों) पर सुवर्ण के रत्न-जटित सजावट के अनेक पदार्थ सजे हैं। यत्र तत्र ऊँची ऊँची सुवर्ण की धूपदानियों में धूप जल रही है। शयन पर चन्द्रापीड़ तथा प्रकाशदेवी बैठे हुए बातें कर रहे हैं। चन्द्रापीड़ की अवस्था लगभग ५० वर्ष की है। उसका वर्ण गौर है तथा शरीर ऊँचा पूरा और गठा हुआ। सिर के लंबे बाल और ऊपर की ओर चढ़ी हुई मूछें श्वेत हो चली हैं। सिर पर सामने की ओर श्वेत पुष्पों की माला अर्द्ध चन्द्राकार रूप से बँधी है। शरीर के ऊपरी भाग में वह कामदार कराल वस्त्र (एक प्रकार का बहुमूल्य ऊनी कपड़ा) धारण किये हुए है। यह वस्त्र भुजाओं के नीचे पसवाड़ों और कटि में रैंदास के सदृश ही बाँधा गया है, परन्तु सुन्दरता से। वस्त्र के छोर दाहिनी ओर लटक रहे हैं। नीचे के अंग में वह कौशेय का अधोवस्त्र धारण किये है। उसके कानों में कुंडल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर, हाथों में वलय और उँगलियों में मुद्रिकाएँ हैं। सब भूषण सुवर्ण के हैं और रत्नों से देदीप्यमान। उसकी ग्रीवा में लंबी पुष्पमाला भी है। उसके मस्तक पर केशर का त्रिपुण्ड लगा है। प्रकाशदेवी की अवस्था लगभग ४५ वर्ष की है। वह भी गौर वर्ण की है और ४५ वर्ष की अवस्था होने पर भी उसका मुख और शरीर अत्यन्त सुन्दर दिखता है। उसकी करालवस्त्र की कामदार साड़ी पृथ्वी को स्पर्श कर रही है। साड़ी के भीतर वह उसी वस्त्र का कुर्तक पहने है। वह भी सारे अंगों में रत्न-जटित भूषण धारण किये है। उसके श्याम केश एक ओर बँध कर पीठ पर फैले हुए हैं। जहाँ केश बँधे हैं वहाँ पुष्प गूँथे हुए हैं। उसके ललाट पर रक्त टिकली तथा ओष्ठों पर ताम्बूल की लालिमा है। चरणों में लाल अलका लगी है।]

चन्द्रापीड़—प्रिये, जीवन की पहली साँस ही मृत्यु का आरंभ है। इस शरीर का कोई भरोसा है? पिता जी ने पचास वर्ष राज्य किया, मैं कितने दिन कर सकूँगा, यह कौन कह सकता है?

प्रकाशदेवी—क्यों नहीं, नाथ, आप सारे व्यसनों से रहित हैं, राज्य-व्यसनों तक से, स्वस्थ हैं, और आपकी सारी दिनचर्या सूर्य के सदृश चलती है। आप बड़े महाराज से भी अधिक राज्य करेंगे, इस में सन्देह को स्थान ही नहीं है।

चन्द्रापीड़—वे युवावस्था में सिंहासनासीन हुए थे और मैं वृद्धावस्था के सन्निकट।

प्रकाशदेवी—वृद्धावस्था! कौन आपको वृद्ध कह सकता है, देव? हमारे वेदों और शास्त्रों में तो सौ वर्ष तक जीने का विधान है। यदि आपकी भी सौ वर्ष की आयु नहीं हो सकती तो फिर किसकी संभव है?

चन्द्रापीड़—जो कुछ हो, मनुष्य को अपने सारे कर्तव्यों को इस प्रकार पालन करना चाहिए जैसे वह कल ही महा-प्रस्थान करने वाला है।

प्रकाशदेवी—सो तो आप कर ही रहे हैं, नाथ।

चन्द्रापीड़—परन्तु हर कार्य में कितनी विघ्न-बाधाएँ आती हैं, कितने उपद्रव होते हैं?

प्रकाशदेवी—और आप उनका निराकरण भी किस असाधारण साहस, धैर्य, बुद्धिमत्ता और न्याय-परायणता से करते हैं? विघ्न-बाधाएँ ही तो जीवन की सच्ची कसौटी हैं। यह कसौटी काली हो तो क्या हुआ, इसी पर तो जीवन रूपी सुवर्ण को कसकर उसकी जाँच होती है।

चन्द्रापीड़—यह तो ठीक है, प्रिये, किन्तु हर बात इतने धीरे धीरे होती है कि उसके समाप्त होते होते उसके पूर्ण होने का आनंद ही चला जाता है; इतना ही नहीं, कई बार मन उद्विग्न तक हो उठता है।

प्रकाशदेवी—सो चाहे हो, अच्छे कार्यों का विचार ही एक विशेष

प्रकार का आनन्द देने वाला है। फिर आज आपको सिंहासनारूढ़ हुए चार वर्षों का एक युग ही तो हुआ है। इन चार वर्षों में आपने कितना कार्य किया है। इतने थोड़े समय में इतना अधिक कार्य काश्मीर का कौन नरेश कर सका ? तभी तो, नाथ, यह माना जा रहा है कि आपके सिंहासनासीन होते ही कलि के स्थान में सत्-युग आगया है। प्रजा का आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक कल्याण ही आपके दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न है।

चन्द्रापीड़—इह लोक के कुछ कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न हो सके हैं, यह मैं भी मानता हूँ, पर अब त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर किसी प्रकार शीघ्र ही बन जाता। उसमें भगवान् की मूर्ति की किसी प्रकार जल्दी ही प्रतिष्ठा हो जाती।

प्रकाशदेवी—यह कार्य भी तो चल ही रहा है, प्राणेश, और शीघ्रता-पूर्वक चल रहा है।

[प्रतिहारी का प्रवेश। वह एक युवती है। कम्बल वस्त्र की साड़ी और कुर्तक पहने है; सुवर्ण के भूषण भी। कटि में चर्म का कमरपट्टा है, जिसमें खड्ग लटक रहा है। खड्ग छोटा है, किन्तु चौड़ा।]

प्रतिहारी—**(अभिवादन कर)** जय हो। त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर के कार्य पर जो कायस्थ नियुक्त हैं, वे आये हैं और श्रीमान् के दर्शन किया चाहते हैं।

चन्द्रापीड़—भेज दो उन्हें यहीं, प्रतिहारी।

प्रतिहारी—जैसी आज्ञा। **(अभिवादन कर प्रस्थान।)**

चन्द्रापीड़—**(प्रसन्नता से)** इन दिनों अनेक अन्य आवश्यक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उस ओर न जा सका था। इन कायस्थों से कार्य कितना आगे बढ़ा इसका पता लग जायगा।

प्रकाशदेवी—अवश्य।

[नृसिंह वर्मा और परशुराम का प्रवेश। दोनों सिर झुका और

हाथ जोड़ राजा तथा रानी का अभिवादन करते हैं । चन्द्रापीड़ और प्रकाशदेवी केवल सिर झुका इस अभिवादन का उत्तर देते हैं ।]

चन्द्रापीड़—बैठो, नृसिंह वर्मा, बैठो, परशुराम । कहो, मन्दिर का कार्य कैसा चल रहा है ?

[दोनों पृथ्वी पर बैठ जाते हैं ।]

नृसिंह वर्मा—कार्य तो बहुत अच्छी तरह चल रहा था, परम-भट्टारक, किन्तु...

चन्द्रापीड़—(बीच ही में जल्दी से) किन्तु कैसा ?

नृसिंह वर्मा—यही निवेदन कर रहा हूँ, श्रीमान् ।

चन्द्रापीड़—(फिर बीच ही में) क्यों कोई झगड़ा खड़ा हो गया ?

नृसिंह वर्मा—एकाएक, महाराज, और ऐसा झगड़ा, जिसकी कोई संभावना ही न थी ।

चन्द्रापीड़—(और भी जल्दी से) कैसा ?

नृसिंह वर्मा—वहाँ एक रैदास नामक चर्मकार रहता है । मन्दिर के घेरे के भीतर उसका गृह आता है । और भी कई चर्मकार वहाँ रहते थे । सबने अपने अपने गृह मन्दिर के लिए सहर्ष दे दिये । सोचा था, यह भी घर दे देगा, परन्तु...

चन्द्रापीड़—उसने देना अस्वीकृत कर दिया, क्यों ?

परशुराम—हाँ, श्रीमान्, और वह भी उत्तेजना के साथ । इस अस्वीकृति में उसने न जाने क्या क्या कह डाला । मैं तो उसको सकुटुम्ब वहीं समाप्त कर रहा था, किन्तु...किन्तु...

चन्द्रापीड़—तुमने बहुत अच्छा किया, अन्यथा तुम्हें भी सकुटुम्ब ऐसा दंड दिया जाता कि...(चुप हो जाता है ।)

परशुराम—(डरते डरते) परन्तु...परन्तु, श्रीमान्, उसने ऐसी ऐसी बातें की हैं कि...(चुप हो जाता है ।)

चन्द्रापीड़—उसने क्या क्या कहा, नृसिंह वर्मा?

नृसिंह वर्मा—उसके सारे कथन का निचोड़ यह है, परमभट्टारक, कि वह अपने और अपने कुटुम्ब के जीते जी अपना जन्म-स्थल, चाहे उसे उसके बदले में कुछ भी क्यों न दिया जाय, कभी न देगा।

प्रकाशदेवी—उसके कुटुम्ब में कौन कौन हैं?

नृसिंह वर्मा—उसकी स्त्री, एक पुत्र और एक पुत्री, महादेवी।

प्रकाशदेवी—और सब प्राण देने को प्रस्तुत हैं?

नृसिंह वर्मा—जान तो यही पड़ता है, महादेवी।

परशुराम—(डरते डरते) मैं तो समझता हूँ केवल बातें हैं। यदि उन सबको कारागृह में...

चन्द्रापीड़—(बीच ही में) चुप रहो, परशुराम। उन्हें कारागार में किस अपराध पर डाला जा सकता है? वे अपना जन्म-स्थल देने को प्रस्तुत नहीं; यह कोई अपराध है? मुझे यदि कोई कहे कि मैं यह राजप्रासाद दे दूँ, और मैं इसे अस्वीकृत करूँ तो यह मेरा कोई अपराध होगा? दंड चोरी के लिए दिया जा सकता है; अन्य इसी प्रकार के अपराधों के लिए दिया जा सकता है। उन्हें अपने जन्म-स्थल से प्रेम है। किसी वस्तु के परिवर्तन में पाने पर भी वे लोग अपने जन्म-स्थल से विलग होने को प्रस्तुत नहीं, वरन उससे विलग होने की अपेक्षा उन्हें अपने प्राणों से विलग होना स्वीकार है। उन्हें निर्धन होने पर भी लोभ नहीं। यह कोई अपराध नहीं।

[चन्द्रापीड़ चुप होकर विचार-मग्न हो जाता है। प्रकाशदेवी, नृसिंह वर्मा और परशुराम कनखियों से चन्द्रापीड़ की ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चन्द्रापीड़—दोष उस चर्मकार का नहीं, तुम लोगों का है। पहले इस झगड़े को मिटाकर तब तुम्हें मन्दिर का कार्य आरंभ करना चाहिए था।

नृसिंह वर्मा—(डरते डरते) किन्तु, श्रीमान्, और सबने सहर्ष अपने घर दे दिये।

चन्द्रापीड़—दे दिये होंगे, एक ही न देने वाला सही। पर जो नहीं देता, उसके स्वत्वों की रक्षा भी तो राजा को ही करनी होगी। राजा के लिए तो सब समान हैं। राजा यदि उसके स्वत्वों की रक्षा न करेगा तो वह अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए किसके पास जायगा? (कुछ रुककर) राज्य में स्थान की कोई कमी न थी। मन्दिर अन्य स्थान पर बन सकता था।

[फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

चन्द्रापीड़—बल का उपयोग बराबर वालों पर किया जा सकता है। काश्मीर पर कोई आक्रमण करेगा तो मैं अपने और अपनी प्रजा के सारे बल के साथ उसका सामना करूँगा। दण्ड चोर आदि अपराधियों को दिया जा सकता है। उस चर्मकार पर न बल का उपयोग कर उसका घर लिया जा सकता है, न उसे कारागार में डाला जा सकता है।

प्रकाशदेवी—तब तो यह एक समस्या, महान् समस्या उपस्थित हो गयी।

चन्द्रापीड़—अवश्य। (कुछ रुककर प्रकाशदेवी से) और इसका निपटारा भी मुझे सहज नहीं दीख पड़ता। (नृसिंह वर्मा से) तुम लोग मन्दिर का काम बन्द कर दो और राजगुरु तथा आमात्य को अभ्यन्तर-आलय में तत्काल उपस्थित होने को कहो। उनसे सारे विषय पर परामर्श करना होगा।

नृसिंह वर्मा
परशुराम }—(खड़े होते हुए एक साथ) जो आज्ञा, परमभट्टारक।

[दोनों का अभिवादन कर प्रस्थान।]

चन्द्रापीड़—(लंबी साँस लेकर) देखा...देखा, प्रिये, शुभ कार्यों में कैसे कैसे विघ्न, कैसी कैसी वाधाएँ आती हैं।

लघु-यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—राजप्रासाद में अभ्यंतर-आलय

समय—प्रातःकाल

[अभ्यन्तर-आलय (दीवाने खास) विशाल आलय है। उसकी पाषाण की भित्तियों में भिन्न भिन्न प्रकार की सुन्दर मूर्तियाँ खुदी हैं। पाषाण के ही स्थूल-स्तंभ आलय की छत को उठाये हुए हैं। स्तंभों पर खुदाव का काम है। आलय की पृथ्वी पर चिकने पाषाण का पटाव है। वीच में सुवर्ण का रत्नों से जड़ा हुआ सिंहासन रखा है और सिंहासन के सामने, सिंहासन की ओर मुख किये हुए, सुवर्ण की रत्न-जटित आसंदियाँ। सिंहासन और आसंदियों पर कामदार कौशेय वस्त्र से ढँकी हुई गद्दियाँ हैं और गद्दियों पर उसी प्रकार के वस्त्रों से ढँके हुए तकिये। सिंहासन पर चन्द्रापीड़ वैठा है और उसके सामने की दो आसंदियों पर चलितक और मिहिरदत्त। चलितक और मिहिरदत्त दोनों की अवस्था लगभग ६० वर्ष की है। दोनों गौर वर्ण के ऊँचे-पूरे व्यक्ति हैं। चलितक कुछ मोटा है और मिहिरदत्त दुवला। दोनों के सिर के लंवे वाल श्वेत हो गये हैं और चलितक की मूछें तथा मिहिरदत्त की मूछें और दाढ़ी भी। चलितक ऊपर के अंग में कम्वल वस्त्र धारण किये हुए है। यह वस्त्र उसी ढंग से वँधा हुआ है जैसे चन्द्रापीड़ का। नीचे के अंग में वह श्वेत सूती अधोवस्त्र पहने है। उसके शरीर पर सुवर्ण के भूषण भी हैं। मिहिरदत्त

मोटा सूती उत्तरीय और उसी प्रकार का अधोवस्त्र धारण किये है। वह आभूषणों से रहित है। चलितक के ललाट पर केशर का त्रिपुण्ड है और मिहिरदत्त के मस्तक तथा भुजाओं पर भस्म के त्रिपुण्ड।]

चन्द्रापीड़—प्रत्येक मनुष्य अपनी संपत्ति का स्वामी है, चाहे वह धनवान हो या निर्धन, उच्च वर्ण में जन्मा हो या नीच वर्ण में; और हर एक व्यक्ति को अपने स्वत्वों के उपभोग में किसी प्रकार की विघ्न बाधा न हो, यह देखना राज्य-सत्ता का कर्तव्य है। यदि राजा प्रत्येक व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा न करेगा तो कौन करेगा ?

चलितक—यह ठीक है, परमभट्टारक, इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक मनुष्य का अपनी सम्पत्ति पर स्वामित्व होता है और हरेक व्यक्ति अपने स्वत्वों का उपभोग कर सके, हर एक के स्वत्वों की रक्षा हो, यह देखना राजा का कर्तव्य है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत संपत्ति पर राज्य का भी अधिकार होता है: और जो राजा हर व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा करता है, वही राजा, सार्वजनिक हित का प्रश्न उपस्थित होने पर, व्यक्ति के स्वत्वों का अपहरण कर, सार्वजनिक लाभ के लिए, व्यक्तिगत संपत्ति, उस व्यक्ति की अनिच्छा रहते हुए भी, बलपूर्वक ले सकता है।

चन्द्रापीड़—किन्तु, सर्वाधिकारी, यहाँ जिस प्रकार के सार्वजनिक हित का प्रश्न उपस्थित है, उसमें उसी का लाभ नहीं, जिसकी संपत्ति हम उसकी अनिच्छा के कारण बलपूर्वक लेने की बात सोच रहे हैं। कुछ ऐसे सार्वजनिक हित हैं जो प्रत्येक वर्ण के लिए बिना किसी विभेद के लाभप्रद होते हैं; और कुछ वर्ण विशेष ही के लिए। जिस चर्मकार का गृह हम त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर के लिए लेने जा रहे हैं उसे उस मन्दिर से क्या लाभ होगा ? वह इस मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकता। मन्दिर के भगवान् का न दर्शन कर सकता, न पूजन।

मिहिरदत्त—किन्तु इससे मन्दिर सार्वजनिक हित की वस्तु नहीं है, यह तो सिद्ध नहीं होता, महाराज। चर्मकार अस्पृश्य है। अपने

पूर्व-जन्म, जन्म-जन्मान्तर के पापों के कारण उसका जन्म अस्पृश्य-जाति में हुआ। उसे मन्दिर में प्रवेश करने, वहाँ दर्शन और पूजन करने का अधिकार नहीं।

चन्द्रापीड़—और राजा को उसकी इच्छा के विरुद्ध, बलपूर्वक उसकी संपत्ति ऐसे मन्दिर के लिए लेने का अधिकार है, जहाँ वह न प्रवेश कर सकता, न दर्शन, न पूजन ?

चलितक—अवश्य। सारी नियम-पद्धतियों और नीतियों के दीर्घ-काल के अध्ययन के पश्चात् जिस 'चलित-स्वामिन्-नियम-पद्धति' का आपकी ही आज्ञानुसार मैंने निर्माण किया है, और जिसके अनुसार राज्य का सारा कार्य चलता है, उसका इस विषय में भी स्पष्ट मत है, श्रीमान्।

चन्द्रापीड़—आपकी विद्वत्ता में मैं सन्देह नहीं करता, महत्तम, किन्तु 'ना विष्णुः पृथवी पतिः' भी शास्त्र का ही एक महा-वाक्य है। यदि राजा विष्णु का अंश है तो उसका कार्य हर प्रकार के भेद भाव के परे होना चाहिए। जिस प्रकार विष्णु के लिए ब्राह्मण और चाण्डाल बराबर हैं, उसी प्रकार राजा के लिए भी। मैं रैदास का झोपड़ा उसकी अनिच्छा से अपनी सत्ता का उपयोग कर कभी न लूँगा। त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर अपने जीवन का श्रेष्ठतम कार्य मानने पर भी मुझसे यह न हो सकेगा। मन्दिर अन्य स्थान पर बनेगा, गुरुदेव, एवं सर्वाधिकारी।

मिहिरदत्त—यह अब हो नहीं सकता, परमभट्टारक, मन्दिर के नींव का जहाँ पूजन हुआ है, मन्दिर तो वहीं बनाना ही होगा। यदि ऐसा न हुआ तो अनावृष्टि होगी, या अतिवृष्टि, दुष्काल पड़ेंगे या महामारियाँ फैलेंगी। एक व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा के स्थान पर आप सारी प्रजा के नाश का आयोजन करेंगे।

चन्द्रापीड़—(चिन्तित स्वर में) आह ! ऐसा...ऐसा ? तब... तब तो यह मेरे जीवन की कदाचित् सबसे महान् समस्या उपस्थित हो गयी।

चलितक—क्षमा करें, श्रीमान् । मैं तो समझता हूँ आप इसे वृथा के लिए महान् समस्या बना रहे हैं । हम रैदास की भूमि, उसका झोपड़ा, एक सार्वजनिक हित के कार्य के लिए ले रहे हैं, फिर वह धार्मिक दृष्टि से भी एक पवित्रतम कार्य है । भूमि के बदले हम उसे उसकी भूमि से कहीं अधिक भूमि दे रहे हैं । उसके कच्चे, फूहड़ झोपड़े के स्थान पर हम उसके लिए पक्का, सुन्दर गृह बनवाने को प्रस्तुत...

चन्द्रापीड़—**(बीच ही में)** किन्तु यह सब उसकी अनिच्छा से ही तो ।

चलितक—इच्छा-अनिच्छा का यहाँ प्रश्न ही नहीं है, परमभट्टारक । वह अस्पृश्य है । जिस प्रकार अभी नगर के बाहर एक स्थान पर रहता है अब भी नगर के बाहर ही दूसरे स्थान पर रहेगा । श्रीनगर उस ओर बढ़ रहा था; वहाँ से उसे हटना ही पड़ता । नगर के बीच में अस्पृश्य नहीं रह सकते । उसकी जाति के अन्य व्यक्ति भी हटे हैं । यह और उत्तम बात हो गयी कि इन चर्मकारों के झोपड़े मन्दिर के घेरे के भीतर आ गये । इससे इनका परलोक भी सुधर जायगा ।

चन्द्रापीड़—श्रीनगर उस ओर बढ़ रहा है, इसलिए उन्हें हटना क्यों पड़ता ? नगर के भीतर अस्पृश्य क्यों नहीं रह सकते ?

चलितक—**(आश्चर्य से)** इसमें, अस्पृश्य नगर में नहीं रह सकते... इसमें भी क्या कोई मतभेद हो सकता है ?

चन्द्रापीड़—क्यों नहीं, वे भी मनुष्य हैं । उच्च वर्णों के सदृश ही मनुष्य ।

चलितक—किन्तु...किन्तु, परमभट्टारक, उनके...उनके नगर में, नगर के निकट, नगर के पड़ोस में रहने के कारण दूसरे वर्णों को जो नाना प्रकार के कष्ट होते हैं ।

चन्द्रापीड़—और उन्हें...उन्हें, जो नगर के बाहर, नगर से दूर रहने में, भांति भांति के क्लेश होते हैं ? मैं...मैं, गुरुदेव एवं महत्तम, राजा रहते हुए इस प्रकार के भेद-भाव, इस प्रकार के...

[चन्द्रापीड़ चुप हो सिर झुका लेता है। चलितक और मिहिरदत्त एकटक चन्द्रापीड़ की ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

चन्द्रापीड़—(धीरे धीरे सिर उठा कर) अच्छा देखिए, मैं स्वयं रैदास से मिलूँगा, और उसका क्या कथन है, यह सुनकर, इस विषय का निराकरण करूँगा।

चलितक—(अत्यन्त आश्चर्य से चिल्ला कर) आप रैदास से मिलेंगे!

मिहिरदत्त—(चलितक सदृश स्वर में) यह कैसे हो सकता है?

चन्द्रापीड़—(आश्चर्य से) क्यों, इसमें क्या कठिनाई है?

चलितक—महाराज, चर्मकार राजप्रासाद में किस प्रकार आ सकता है? आज पर्यन्त कभी ऐसा नहीं हुआ।

मिहिरदत्त—और आप उससे संभाषण क्योंकर कर सकते हैं? उसकी छाया भी यदि आप पर पड़ गयी तो आपका पुनः अभिषेक करना पड़ेगा, श्रीमान्।

चन्द्रापीड़—ऐसा? तो...तो राजप्रासाद की अश्व-शाला में जो अश्व रहते हैं, गज-शाला में जो गज निवास करते हैं, गो-शाला में जो गोधन रहता है, सिंह-द्वार पर जो श्वान रहते हैं, इन सारे पशुओं से भी वह निकृष्ट है? मैं हरिण और हरिणी से, शुक और सारिका से, पशु पक्षियों से संभाषण कर सकता हूँ, पर मनुष्य से नहीं?

मिहिरदत्त—महाराज, धार्मिक आज्ञाओं में इस प्रकार के तर्क को स्थान नहीं।

चलितक—और आप राजा हैं, परमभट्टारक, जब तक सिंहासनासीन हैं तब तक परंपरागत राज-धर्म का पालन करना ही आपका कर्तव्य है।

[चन्द्रापीड़ सिर झुका कर फिर विचार-मग्न हो जाता है। मिहिरदत्त और चलितक उत्सुकता से चन्द्रापीड़ की ओर देखते हैं। कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

चन्द्रापीड़—(धीरे धीरे सिर उठाकर) मैं तो समझता था, गुरुदेव, आर्य-धर्म तर्क पर ही अवलंबित है; और, सर्वाधिकारी, राज-धर्म उसी का अंग; साथ ही मैं मानता था कि मैं केवल उच्च वर्णों का ही नहीं, नीच वर्णों का भी, अस्पृश्यों का, समस्त का राजा हूँ; परन्तु जाने दीजिए, इस बात को; मैं इस विषय में इस समय विवाद न करूँगा। मैं रैदास से राजप्रासाद के बाहर मिलूँगा और उससे इस प्रकार संभाषण करूँगा, जिससे उसकी छाया भी मेरे शरीर पर न पड़े।

[चन्द्रापीड़ उठता है। चिन्तापूर्ण मुद्रा से मिहिरदत्त और चलितक भी उठते हैं।]

लघु-यवनिका

चौथा दृश्य

स्थान—पहले दृश्य वाला

समय—प्रातःकाल

[समतल-भूमि का वही भाग है जो पहले दृश्य में था। सूर्य कुछ ऊपर चढ़ आया है। मन्दिर का सारा काम बन्द है। रैदास के झोपड़े के बाहर भी कोई नहीं है। नृसिंह वर्मा और परशुराम का एक ओर से प्रवेश। दोनों के मुखों पर अत्यधिक ग्लानि है; परशुराम के मुख पर तो ग्लानि के साथ क्रोध भी।]

परशुराम—(रुककर) बस, बन्धु, बस, अब एक पैर भी आगे नहीं बढ़ा जाता। पैरों में पारद भर गया है, पारद। मैं खड़ा हूँ, तुम्हीं झोपड़े के निकट जाकर उसे महाराज का सन्देश दे दो।

नृसिंह वर्मा—थोड़ी समझ से काम लेना चाहिए, बन्धु, ऐसा न करो। किस कठिनाई से तो तुम आये और फिर वही बात। •

परशुराम—मैं आया कैसे, इसी पर मुझे आश्चर्य हो रहा है।

नृसिंह वर्मा—राजाज्ञा का उल्लंघन करते ?

परशुराम—(विचार करते हुए) मैं समझता हूँ, ऐसी राजाज्ञा का उल्लंघन ही करना चाहिए; और ऐसे राजा की आज्ञा का तो अवश्य। (कुछ रुककर) बन्धु, यह राजा सच्चा राजा ही नहीं, वणिक-पुत्री इसकी माता है और क्षत्रिय पिता। वर्णसंकर है वर्णसंकर। शुद्ध क्षत्रिय होता तो कभी चर्मकार से संभाषण करने उसे राजप्रासाद में बुलवाता ?

नृसिंह वर्मा—निरर्थक बातें न करो, परशुराम। हमें व्यक्ति से नहीं सिंहासन से प्रयोजन है। चन्द्रापीड़ आज सिंहासनासीन हैं और उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन हमारा धर्म है।

परशुराम—तुम वृद्ध हो चले हो, बन्धु, यदि नाड़ियों में युवा-रक्त होता. . . (चुप हो जाता है।)

नृसिंह वर्मा—तो क्या करता ?

परशुराम—(क्रोध से) क्या करते ? विप्लव या कायस्थ-पद का त्याग।

नृसिंह वर्मा—कभी मेरी नाड़ियों में भी युवा रक्त था, बन्धु, और आज भी क्षत्रिय रक्त ही है। यह न समझो कि महाराज की इस आज्ञा से मेरे हृदय को कम ठेस लगी है। मन्दिर का कार्य स्थगित हो गया, हमें चर्मकार को बुलाने आना पड़ा, चर्मकार राजप्रासाद को चलेगा, उससे महाराज संभाषण करेंगे, ऐसी ऐसी बातें जो कभी नहीं हुईं, मुझे कम दुख नहीं पहुँचा रही हैं, परन्तु समझ से काम लेना होगा। हम भी अपने अवसर की बाट जोहेंगे। (कुछ रुककर, हाथ पकड़, आगे को खींचते हुए) चलो, चलो भी।

परशुराम—(न जाते हुए) बन्धु, अब आगे तो न जाऊँगा।

नृसिंह वर्मा—(निराशा के स्वर में) अच्छी बात है, पुकार कर यहीं बुलाता हूँ, पर आज्ञा यह थी कि उसे सम्मानपूर्वक लाया जाय। (जोर से) रैदास ! ओ रैदास !

झोपड़े से—(जोर से) कौन...कौन है ?

नृसिंह वर्मा—(जोर से) हम हैं नृसिंह वर्मा और परशुराम।

झोपड़े से—(जोर से) आया, श्रीमान्।

[रैदास जल्दी जल्दी झोपड़े से आता है और दोनों का उसी प्रकार अभिवादन करता है। केवल नृसिंह वर्मा अभिवादन का उत्तर देता है। परशुराम मुँह फेर लेता है।]

नृसिंह वर्मा—देखो, तुम्हें परमभट्टारक ने बुलाया है।

रैदास—(अत्यन्त आश्चर्य से) मुझे परमभट्टारक ने बुलाया है ?

नृसिंह वर्मा—हाँ, तत्काल।

रैदास—(उसी प्रकार आश्चर्य से) परमभट्टारक...परमभट्टारक ने ?

नृसिंह वर्मा—हाँ, हाँ, परमभट्टारक ने।

रैदास—(अपनी छाती ठोंकते हुए) मुझे ?

नृसिंह वर्मा—हाँ, हाँ, तुम्हें।

रैदास—मुझे ही ?

नृसिंह वर्मा—हाँ, हाँ, तुम्हें, तुम्हें ही।

रैदास—राजप्रासाद को ?

नृसिंह वर्मा—परमभट्टारक और कहाँ बुलायँगे ?

रैदास—(दाहिने हाथ की तर्जनी को उठा उठाकर) और मुझसे वे संभाषण करेंगे ?

नृसिंह वर्मा—संभाषण न करना होता तो बुलवाते क्यों ?

रैदास—(दोनों हाथों की पाँचों उँगलियों को ऊपर उठाकर) मुझे परमभट्टारक ने बुलाया है, राजप्रासाद को, मुझसे वे संभाषण करेंगे !

[रैदास सिर झुकाकर सोचने लगता है। नृसिंह वर्मा उसकी ओर देखता है। परशुराम सामने की पर्वत-मालाओं की ओर देखने का प्रयत्न करता है, पर बार बार उसकी दृष्टि रैदास पर पड़ती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

रैदास—(धीरे-धीरे) आप मुझसे हँसी तो नहीं कर रहे हैं, श्रीमान् ?

परशुराम—(एकाएक) हाँ, बात तो हँसी, सचमुच ही हँसी, बहुत बड़ी हँसी की है, परन्तु...

नृसिंह वर्मा—(जल्दी से परशुराम से) चुप रहो, परशुराम। (रैदास से गम्भीरता पूर्वक) हम हँसी करने नहीं आये हैं, रैदास; यथार्थ में परमभट्टारक ने तुम्हें राजप्रासाद को बुलाया है।

परशुराम—(जल्दी से) और इस बात पर घमंड न करना। राजा ने बुलाया है, तो भी रहोगे चर्मकार ही, ब्रह्मर्षि या राजर्षि न हो जाओगे। और मस्तक को भी ठीक अपने स्थान पर बालों के नीचे तथा आँखों और नाक के ऊपर रखना। यह सब अवसर...अवसर की बात है...

नृसिंह वर्मा—(जल्दी से बीच ही में) ओह ! ओह ! परशुराम... परशुराम... (रैदास से) अच्छा, हम लोग चलते हैं, तुम शीघ्र ही आओ।

[नृसिंह वर्मा परशुराम का हाथ पकड़कर जाने लगता है।]

रैदास—(कुछ विचार कर जल्दी से) सुनिए, सुनिए, श्रीमान्, (दोनों रुक जाते हैं।) परमभट्टारक की आज्ञा किसे शिरोधार्य न होगी, किन्तु... किन्तु... (चुप हो जाता है।)

नृसिंह वर्मा—किन्तु क्या, तुम्हें वहाँ आना स्वीकार नहीं ?

रैदास—मैं यह नहीं कहता, श्रीमान्, परन्तु मैं हूँ चर्मकार, अस्पृश्य, कोई अस्पृश्य आज पर्यन्त कभी भी राजप्रासाद को नहीं गया। परम-भट्टारक मुझसे संभाषण कैसे करेंगे ? यह उनकी उदारता और महानता है कि वे मुझे राजप्रासाद को बुलवा रहे हैं, किन्तु इससे आप, सामन्तों, राजपुत्रों, सभी उच्च वर्णवालों को, दुःख पहुँचेगा। मैं किसी को कोई क्लेश नहीं पहुँचाना चाहता। मैं तो अपने प्राणों को हथेली पर रखे सकुटुंब (अपने झोपड़े की ओर संकेत कर) इस झोपड़े के साथ महा-प्रस्थान करने, अथवा इसे छोड़ कारागार की ओर पग उठाने, को प्रस्तुत हूँ। राजप्रासाद

में मेरा क्या कार्य है ? आप मेरी ओर से परमभट्टारक को निवेदन कर दें कि मैं राजाज्ञा की अवहेलना नहीं करना चाहता, किन्तु इतने लोगों को कष्ट पहुँचा...

नृसिंह वर्मा—(परशुराम की ओर क्रूर दृष्टि से घूरते हुए) नहीं, नहीं, रैदास, तुम्हें परमभट्टारक बुला रहे हैं, इसमें हमें क्या क्लेश पहुँच सकता है ? हम उन्हें तुम्हारे इस सन्देश के अतिरिक्त कि 'तुम आ रहे हो' और कोई सन्देश देने में असमर्थ हैं; और राजाज्ञा ही नहीं, पर शिष्टाचार की दृष्टि से भी तुम्हें अविलंब राजप्रासाद को आना चाहिए।

[रैदास के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना नृसिंह वर्मा जल्दी से जाता है; साथ में हाथ पकड़े हुए परशुराम को भी ले जाता है। रैदास कुछ देर सिर नीचा किये हुए विचार-मग्न रहता है। फिर एकाएक जोर से हर्षपूर्वक पुकारता है—'यशोदा ! यशोदा !' यशोदा झोपड़े से जल्दी जल्दी रैदास के निकट आती है।]

रैदास—(जोर से) अरे ! सुना, सुना, तूने ? एक विचित्र, एक अद्भुत, एक अभूतपूर्व, एक विलक्षण, एक महान् संवाद सुना ?

यशोदा—क्या, क्या, नाथ ?

रैदास—मुझे परमभट्टारक ने बुलाया है, परमभट्टारक, हाँ, सुन, सुन, सुन, परमभट्टारक ने राजप्रासाद को, और कहीं...और कहीं नहीं, राजप्रासाद को; अभी, तत्काल, अविलंब। (दाहिने हाथ की तर्जनी उठाकर घुमाते हुए) परमभट्टारक ने बुलाया है, राजप्रासाद को, तत्काल। और...और वे मुझसे बोलेंगे, सुना, संभाषण, हाँ, हाँ, हाँ, संभाषण करेंगे, अपने...स्वयं अपने श्रीमुख से ! तू समझी, कुछ समझी या नहीं ? मुझे बुलाया है परमभट्टारक ने, अविलंब राजप्रासाद को, संभाषण करने के निमित्त।

यशोदा—और इतनी सी बात पर आपको इतना हर्ष हो रहा है ?

रैदास—(क्रोध से) इतनी...इतनी सी बात ! यह कोई छोटी ...छोटी बात है ? आज पर्यन्त किस राजा ने चर्मकार को, एक अस्पृश्य को राजप्रासाद में बुलाया ?

यशोदा—चन्द्रापीड़ अत्यन्त न्यायी और उदार नरेश हैं, इसमें सन्देह नहीं, नाथ, किन्तु आप...आपका भी कितना शुद्ध, कितना उदार हृदय है। इतनी सी बात पर उच्चवर्ण वालों के प्रति आपका जो क्रोध था, उनके प्रति आपके मन में जो ग्लानि थी, वह कैसा उड़ गया, वह कैसी धुल गयी ? (कुछ रुककर) एक बात पूछूँ, नाथ ?

रैदास—जल्दी पूछ ले, शीघ्र से शीघ्र। मैं जा जो रहा हूँ। और जाने के पहले स्नान जो करना है, मलमलकर। वस्त्र जो बदलना है, नये नये, सर्वथा नये पहनूँगा। जल्द पूछ, जल्द। उन्होंने तत्काल जो बुलाया है, अविलंब।

यशोदा—उन्होंने यदि हमारा झोपड़ा माँगा तो आप क्या कहेंगे ?

[रैदास एकाएक विचार-मग्न हो जाता है। यशोदा उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

रैदास—ऐसा...ऐसा वे करेंगे ? मुझ अकिंचन से सर्व सम्पन्न सम्राट् कुछ माँगेंगे ?

यशोदा—इसीलिए तो उन्होंने बुलाया है, नाथ।

रैदास—(विचार करते हुए) तुम कहती थीं न, झोपड़ा हमारे लिए प्रिय है, महत्व का है, पर त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर...भगवान् का मन्दिर तो...

यशोदा—(हँसते हुए) पिघल गये, मेरे नाथ, पिघल...

रैदास—(बीच ही में) नहीं नहीं, नहीं नहीं, यशोदा, मैं उनसे कह दूँगा, आपको जितना प्रिय अपना राजप्रासाद है, उतना ही प्रिय मुझे अपना झोपड़ा। वह...वह तो मैं नहीं...कदापि नहीं दे सकता। आप मन्दिर किसी अन्य स्थान पर बनवाइए। काम आपने बन्द करा ही दिया

है, मन्दिर किसी अन्य स्थान पर भी वन सकता है। (जाते हुए) अच्छा, देर हो रही है, उन्होंने मुझे अविलंब बुलाया है, तत्काल...अभी स्नान करना है। दूसरे स्वच्छ वस्त्र पहनना है...जल्दी, शीघ्र...

[रैदास का शीघ्रता से झोपड़ी की ओर प्रस्थान। यशोदा हँसती हुई पीछे-पीछे जाती है।]

लघु-यवनिका

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—श्रीनगर का एक मार्ग

समय—प्रातःकाल

[दूर पर वितास्ता का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, जो सूर्य की श्वेत किरणों में चमक रहा है। उसके किनारों पर भिन्न भिन्न रंगों के पुष्पों से युक्त वृक्षावली है, जिससे उसके पुलिन की शोभा कई गुनी बढ़ गयी है। वितास्ता के किनारे से मार्ग सामने की ओर आया है। मार्ग के दोनों ओर अनेक खण्डों के गृह दिखायी देते हैं। यह गुप्त-कालीन शिल्पकला के अनुसार बने हैं। मार्ग में नगर-वासियों की एक छोटी सी भीड़ जमा है और उसमें ऊँचे स्वर से वाद-विवाद हो रहा है। नगर-वासियों में वृद्ध, युवा, बालक सभी अवस्थाओं के व्यक्ति हैं, किन्तु हैं सब उच्च वर्णों के। सभी ऊपर के अंगों में कम्बल वस्त्र धारण किये हुए हैं, जो भुजाओं के नीचे पसवाड़ों तथा कटि में बँधकर ऊपर का सारा अंग ढाँके हुए हैं। नीचे के शरीर में सब अधोवस्त्र पहने हैं। अधिकतर व्यक्तियों के अधोवस्त्र सूती हैं, किसी किसी के कौशेय के भी। अधिकांश नागरिक आभूषण भी पहने हैं, किन्तु ब्राह्मण आभूषणों से रहित हैं। निराभरणता तथा भस्म के त्रिपुण्ड ब्राह्मणों के विशेष लक्षण हैं। समस्त नगर-वासियों में

सबसे अधिक ध्यान आदित्य शर्मा आकर्षित करता है। आदित्य शर्मा की अवस्था २१, २२ वर्षों से अधिक नहीं है। वह गौरवर्ण का, ऊँचा-पूरा, गठे हुए शरीर का सुन्दर युवक है। सिर पर लंबे, काले केश और ऊपर के ओष्ठ पर निकलती हुई रेख ने उसके सौंदर्य को और बढ़ा दिया है। वह एक सूती उत्तरीय और अधोवस्त्र पहने है। मस्तक और बाहुओं पर भस्म के त्रिपुण्ड लगाये है। भूषणों से रहित होने पर भी उसका तेज अन्य व्यक्तियों की दीप्ति को म्लान कर रहा है। गृहों के झरोखों और खिड़कियों से अनेक स्त्रियाँ अपने मुख निकाल निकाल इस भीड़ को देख रही तथा इनका संवाद सुन रही हैं।]

एक नागरिक—परन्तु अस्पृश्यों को नागरिकता के अधिकार ही नहीं हैं।

आदित्य शर्मा—यह उनके साथ सबसे बड़ा अन्याय है।

दूसरा—अन्याय ! अन्याय कैसा ? भारतीय समाज में पात्र के अनुसार अधिकार की व्यवस्था है; सवर्णों के भी अधिकार समान नहीं, तब अस्पृश्यों को नागरिकता के अधिकार क्योंकर दिये जा सकते थे ?

तीसरा—आप सर्वथा ठीक कहते हैं। चाण्डाल, चर्मकार आदि का खानपान देखिए, उनके कर्म देखिए, कुछ भी देखिए।

चौथा—निस्सन्देह, वे मरे पशु का मांस खाते हैं, विष्ठा उठाते, चर्म निकालते, उसे कमा, उसके पदत्राण बना, अपना निर्वाह करते हैं।

आदित्य शर्मा—बन्धुओ, मरे पशुओं का मांस खाने के लिए हमने उन्हें बाध्य किया है; हमने उन्हें इतना निर्धन बना दिया है कि अपनी क्षुधा तक तृप्त करने के लिए उनके पास साधन नहीं। विष्ठा उठाना कोई अपराध है ? यदि विष्ठा करना अपराध नहीं तो उठाना तो हो ही नहीं सकता। वे विष्ठा न उठाएँ तो हम एक दिन भी अपने गृहों में नहीं रह सकते। रहा चर्म निकाल उसके पदत्राण बनाना। एक दिन चलिए

तो पहाड़ी प्रदेश में बिना पदत्राणों के; कंकड़ों और कंटकों से पुरुषों के पदों में स्वाभाविक अलका लग जायगी। हम उनसे ऐसी सेवाएँ लेते हैं, जो समाज में अन्य कोई करने को प्रस्तुत नहीं; और बदले में उन्हें देते क्या हैं? अस्पृश्यता; नागरिकता के अधिकार तक नहीं।

पाँचवाँ—तो तुम चाहते क्या हो? अस्पृश्यों को भी समाज में समान अधिकार दे दिया जाय?

आदित्य शर्मा—अवश्य, यदि समाज मनुष्यों का है तो उसमें प्रत्येक मानव को समान अधिकार होना ही चाहिए।

एक ब्राह्मण—(क्रोध से) हो नहीं सकता, कदापि नहीं। ब्राह्मण क्षत्रियों के पड़ोस में चाण्डाल, चर्मकार रह नहीं सकते। रहेंगे तो हम-पर उनकी छाया पड़ेगी। ब्राह्मण पर चाण्डाल या चर्मकार की छाया पड़ जाय तो बिना पवित्र हुए उसका वेदोक्त कर्म नहीं हो सकता। ब्राह्मण का भोजन चाण्डाल या चर्मकार देख ले तो वह 'अमृतो पस्तरणमसि' कह, आचमन कर, 'सत्यन्त्वरितेन परिशिञ्चामि' कह, भोजन के चारों ओर जल सींच, उस भोजन को ग्रहण नहीं कर सकता। इन वर्णों के निकट रहने से हमारे न इह लोक के कर्म हो सकते न हमें परलोक में स्वर्ग प्राप्त हो सकता।

आदित्य शर्मा—इह लोक के कर्म करने में तो ये सारी बाधाएँ हमने बनायी हैं, रहा परलोक, सो यह समझ रखिए कि ईश्वर के लिए ब्राह्मण और चाण्डाल बराबर हैं और जब तक भगवद्गीता के 'शुनिश्चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः' वाक्यानुसार हम समदर्शी नहीं हो जाते, तब तक हम स्वर्ग में पैर भी न रख सकेंगे।

दूसरा ब्राह्मण—(अत्यन्त क्रोध से) अरे! ब्राह्मण होकर तू कैसी बातें करता है? हम अस्पृश्यों को स्पर्श करलें, उनका छुआ भोजन कर लें?

आदित्य शर्मा—जो गाय विष्ठा भी खा लेती है, उसका हम

पूजन करते हैं। प्रहरी के रूप में बड़े बड़े क्षत्रिय श्वानों को पालते हैं। चूहों को खाने के पश्चात् बिल्ली मुख-मार्जन कर हमारा दूध, दही नहीं खाती; उसे भगा कर, रखा हुआ दूध, दही, उसका उच्छिष्ट, हम खाते हैं। पर मनुष्य...मनुष्य को हमने पशुओं से निकृष्ट, ऐसे वैसे पशुओं से नहीं, निकृष्ट से निकृष्ट पशु कुत्ते बिल्लियों से भी निकृष्ट मान लिया है। हम यह मानते हैं कि भगवान् सर्वव्यापी हैं; अस्पृश्यों में भी भगवान् का निवास है, इसे हम अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार अस्वीकृत नहीं कर सकते। अस्पृश्यों का इस प्रकार अपमान कर हम स्वयं भगवान् का अपमान कर रहे हैं, यह न भूलना।

कुछ युवक—(एक साथ) आप सत्य...सर्वथा सत्य कह रहे हैं, आदित्य शर्मा।

एक वृद्ध ब्राह्मण—(अत्यन्त क्रोध से) अरे! तुम युवक तो सारे समाज को रसातल को ले जाओगे।

दूसरा वृद्ध ब्राह्मण—तलातल को, महातल को।

आठवाँ—छोड़ो भी यह वाद-विवाद, चलो राजप्रासाद को, सुनना नहीं है परमभट्टारक और चर्मकार की बातें?

नवाँ—हाँ, शीघ्र न चलेंगे तो हम यहीं वाद-विवाद करते रहेंगे और परमभट्टारक तथा उसकी बातचीत समाप्त हो चुकेगी।

तीसरा ब्राह्मण—बन्धुओ, मेरी तो इच्छा ही राजप्रासाद को चलने की नहीं होती। राजा का अस्पृश्य से मिलना, उससे संभाषण, मैं कैसे देख सकूँगा?

दसवाँ—हाँ, आज पर्यन्त तो कभी ऐसा नहीं हुआ।

ग्यारहवाँ—पर, बन्धुओ, राजा उससे प्रासाद के बाहर मिलेंगे, इस प्रकार संभाषण करेंगे, जिससे उसकी छाया उनके शरीर पर न पड़ सके।

चौथा ब्राह्मण—हाँ, यह अवश्य देखना है कि परमभट्टारक चर्मकार से कैसे मिलते और किस प्रकार से संभाषण करते हैं, क्योंकि

चर्मकार की छाया भी यदि राजा पर पड़ गयी तो वह राजा ही नहीं रह सकता। काश्मीर में ऐसे विवादग्रस्त अवसरों पर प्रजा राजा को चुनती है। धर्म के विरुद्ध राजा ने कोई भी कार्य किया तो क्रान्ति होगी, नया राजा चुना जायगा।

पाँचवाँ ब्राह्मण—तब तो हमें परमभट्टारक और चर्मकार की यह भेंट देखना ही चाहिए।

आदित्य शर्मा—(हँसते हुए) और मैं भी चलकर देखता हूँ। राजा ने यदि प्रासाद में बुलाकर चर्मकार का अपमान किया तो हम क्रान्ति करेंगे।

छठवाँ ब्राह्मण—(अत्यंत क्रोध से) ब्राह्मण कुल कलंक !

बारहवाँ—बन्धुओ, मैं तो एक दूसरी ही बात देखने चल रहा हूँ।

तेरहवाँ—कौनसी ?

बारहवाँ—यह कि वह चर्मकार त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर के लिए अपना झोपड़ा देता है या नहीं।

चौदहवाँ—मैं भी यही देखने चल रहा हूँ। और जानते हो उसके न देने पर परमभट्टारक ने यदि बलपूर्वक उस झोपड़े को न ले लिया तो मैं क्या करने वाला हूँ ?

तेरहवाँ—क्या ?

चौदहवाँ—आज, सुना, आज ही उसका झोपड़ा उखाड़ कर फेंक दूँगा।

छठवाँ ब्राह्मण—यह तो करना ही पड़ेगा, नींव पूजन के पश्चात् मन्दिर उस स्थल पर बनना थोड़े ही रुक सकता है।

सातवाँ ब्राह्मण—हाँ, हाँ, रुका तो अनावृष्टि, या अतिवृष्टि होगी, दुष्काल पड़ेगा, महामारी फैलेगी, सारी प्रजा त्राहि-त्राहि और पाहि-पाहि शब्दों को चिल्ला-चिल्लाकर काल के कराल मुख में चली जायगी।

कुछ नागरिक—(एक साथ) हाँ, हाँ, हम सब उसके झोपड़े को खोदकर फूँक देने में तुम्हारा साथ देंगे।

आदित्य शर्मा—अन्ध और मिथ्या विश्वास ! देखें कौन उसका झोपड़ा खोदता है ? श्रीनगर का प्रत्येक युवक उसकी और उसके झोपड़े की रक्षा करेगा।

कुछ युवक—(एक साथ) अवश्य, अवश्यमेव।

आठवाँ—मैं कहता हूँ, निरर्थक का विवाद हो रहा है। पहले चलो तो, देखो तो होता क्या है। (वह चलता है।)

नवाँ—हाँ, हाँ, यह ठीक है, यह ठीक है। (वह भी चलता है।)

[शेष नागरिक भी चलना आरंभ करते हैं।]

लघु-यवनिका

छठवाँ दृश्य

स्थान—दूसरे दृश्य वाला

समय—मध्याह्न

[चन्द्रापीड़ कुछ सोचते हुए अकेला इधर उधर घूम रहा है। प्रकाश-देवी का जल्दी जल्दी प्रवेश।]

प्रकाशदेवी—भोजन भी अभी नहीं करेंगे, नाथ ?

चन्द्रापीड़—रैंदास के आने की सूचना किसी क्षण भी आ सकती है। मैं उससे मिलने के पश्चात् ही भोजन करूँगा।

प्रकाशदेवी—पर वह आ भी गया तो कुछ समय ठहर सकता है।

चन्द्रापीड़—ठहर तो सकता है, प्रिये, किन्तु उससे प्रासाद के बाहर जो मिलना है। वहाँ बड़ा भारी जन-समुदाय इकट्ठा हो गया है, और प्रतिपल बढ़ता जा रहा है। इस समय रैंदास का उस जन-समुदाय के बीच देर तक अकेले रहना उचित नहीं है।

[प्रकाशदेवी दुखित मुद्रा से एक लंबी साँस लेती है। चन्द्रापीड़ से उसकी मुद्रा और दीर्घ निश्वास छिप नहीं पाते।]

चन्द्रापीड़——क्यों, प्रिये, तुम्हे भी रैदास से मेरा मिलना ठीक नहीं जान पड़ता ?

प्रकाशदेवी——मुझे तो वही ठीक जान पड़ता है, नाथ, जो आपको, परन्तु आज पर्यन्त कोई राजा अस्पृश्य से नहीं मिला।

चन्द्रापीड़——(शयन पर बैठते हुए) और जो किसी दूसरे ने नहीं किया वह मुझे भी नहीं करना चाहिए ?

प्रकाशदेवी——(शयन पर बैठ) राज-सिंहासन पर जब तक आप आसीन हैं तब तक तो आप को परंपरागत राज-धर्म का पालन करना ही होगा।

चन्द्रापीड़——तुम तो वही बात कह रही हो, प्रिये, जो साधारण बुद्धि रखने वाले कहा करते हैं। पर आज प्रातःकाल तो तुम कह रही थीं कि काश्मीर के किस राजा ने चार वर्षों के एक युग में उतना काम किया, जितना मैंने ? आज ही तुमने कहा था जो विघ्न-बाधाएँ मेरे कार्यों के बीच में आती हैं उनका निवारण मैं असाधारण साहस, धैर्य, बुद्धिमत्ता और न्यायपरायणता से करता हूँ। हर बात को यदि मैं परंपरागत प्रणाली से ही करता रहूँ तो मुझ में असाधारणता कहाँ ? मेरे संबंध मे कुछ घड़ियों में ही तुम्हारे मत में परिवर्तन हो गया ?

प्रकाशदेवी——(चन्द्रापीड़ की ओर देखते हुए, सहमे हुए स्वर में) ऐसा नहीं है, नाथ; मेरा मन आपके संबंध में कभी परिवर्तित हो सकता है ? प्रथम-मिलन से ले आज पर्यन्त ऐसा ही रहा है, और भगवान् से प्रार्थना है कि अन्त तक ऐसा ही रहे, किन्तु. . .किन्तु. . . (चुप हो जाती है।)

चन्द्रापीड़——(प्रकाशदेवी की ओर देखते हुए) हाँ, किन्तु पर चुप क्यों हो गयीं ? पूरी बात कहो, प्रिये।

प्रकाशदेवी—प्राणेश, बाहर जो भीड़ जमा हो रही है, उसमें अधिकांश व्यक्ति क्या कह रहे हैं, इसकी सूचना आपके पास आयी है ?

चन्द्रापीड़—हाँ, आयी है, लोग मेरे चर्मकार से मिलने, उसके साथ संभाषण करने के विरुद्ध हैं।

प्रकाशदेवी—ठीक, और राजा रहते हुए प्रजा-रंजन आपका कर्तव्य है, प्रजा के मत के विरुद्ध जाना नहीं।

चन्द्रापीड़—तुम भूल कर रही हो, देवि, प्रजा-रंजन राजा का कर्तव्य होते हुए भी वह जीवित व्यक्ति है। उसका व्यक्तित्व भी है। वह कोई निर्जीव पुतला नहीं। कौन बात उचित और कौन अनुचित है इसके निर्णय करने की उसे ईश्वर ने बुद्धि दी है। वरन् किसी के राजा होने पर उसमें ईश्वर का निवास हो जाता है, यह तक हमारे वेद, शास्त्र और पुराण कहते हैं। भगवान् ने गीता में अपनी विभूतियों को गिनाते हुए 'नराणांच नराधिपं' कहा है। 'ना विष्णुः पृथवीपतिः' शास्त्रों का एक दूसरा महा-वाक्य है। एक ओर यदि मैं प्रजा का प्रतिनिधि हूँ, उसका रंजन मेरा कर्तव्य है, तो दूसरी ओर मैं उस ईश्वर का अंश हूँ, जिसका समस्त सृष्टि में समान रूप से निवास है; जिसकी दृष्टि में ब्राह्मण, क्षत्रिय और चाण्डाल, चर्मकार में कोई भेद नहीं; जो सबके स्वत्वों की समान रूप से रक्षा करता है। एक ओर यदि मैं प्रजा-रंजन का ध्यान रखूँगा तो दूसरी ओर बहुमत के रंजन के लिए अल्पमत के स्वत्वों का अपहरण तो नहीं कर सकता। मुझे तो शक्ति रहते समाज के प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा की ओर ध्यान रखना होगा। इसके लिए अवसर पड़ने पर मुझे चाण्डाल से भी मिलना होगा और चर्मकार से भी। मैं एक दूसरे में भेद-विभेद नहीं कर सकता।

प्रकाशदेवी—किन्तु इसका परिणाम क्या निकल सकता है, आप जानते हैं, नाथ ?

चन्द्रापीड़—क्या ?

[प्रकाशदेवी दुखित मुद्रा से एक लंबी साँस लेती है। चन्द्रापीड़ से उसकी मुद्रा और दीर्घ निश्वास छिप नहीं पाते ।]

चन्द्रापीड़—क्यों, प्रिये, तुम्हें भी रैदास से मेरा मिलना ठीक नहीं जान पड़ता ?

प्रकाशदेवी—मुझे तो वही ठीक जान पड़ता है, नाथ, जो आपको, परन्तु आज पर्यन्त कोई राजा अस्पृश्य से नहीं मिला।

चन्द्रापीड़—**(शयन पर बैठते हुए)** और जो किसी दूसरे ने नहीं किया वह मुझे भी नहीं करना चाहिए ?

प्रकाशदेवी—**(शयन पर बैठ)** राज-सिंहासन पर जब तक आप आसीन हैं तब तक तो आप को परंपरागत राज-धर्म का पालन करना ही होगा।

चन्द्रापीड़—तुम तो वही बात कह रही हो, प्रिये, जो साधारण बुद्धि रखने वाले कहा करते हैं। पर आज प्रातःकाल तो तुम कह रही थीं कि काश्मीर के किस राजा ने चार वर्षों के एक युग में उतना काम किया, जितना मैंने ? आज ही तुमने कहा था जो विघ्न-बाधाएँ मेरे कार्यों के बीच में आती हैं उनका निवारण मैं असाधारण साहस, धैर्य, बुद्धिमत्ता और न्यायपरायणता से करता हूँ। हर बात को यदि मैं परंपरागत प्रणाली से ही करता रहूँ तो मुझ में असाधारणता कहाँ ? मेरे संबंध में कुछ घड़ियों में ही तुम्हारे मत में परिवर्तन हो गया ?

प्रकाशदेवी—**(चन्द्रापीड़ की ओर देखते हुए, सहमे हुए स्वर में)** ऐसा नहीं है, नाथ; मेरा मत आपके संबंध में कभी परिवर्तित हो सकता है ? प्रथम-मिलन से ले आज पर्यन्त ऐसा ही रहा है, और भगवान् से प्रार्थना है कि अन्त तक ऐसा ही रहे, किन्तु. . .किन्तु. . . **(चुप हो जाती है।)**

चन्द्रापीड़—**(प्रकाशदेवी की ओर देखते हुए)** हाँ, किन्तु पर चुप क्यों हो गयीं ? पूरी बात कहो, प्रिये।

प्रकाशदेवी—प्राणेश, बाहर जो भीड़ जमा हो रही है, उसमें अधिकांश व्यक्ति क्या कह रहे हैं, इसकी सूचना आपके पास आयी है ?

चन्द्रापीड़—हाँ, आयी है, लोग मेरे चर्मकार से मिलने, उसके साथ संभाषण करने के विरुद्ध हैं।

प्रकाशदेवी—ठीक, और राजा रहते हुए प्रजा-रंजन आपका कर्तव्य है, प्रजा के मत के विरुद्ध जाना नहीं।

चन्द्रापीड़—तुम भूल कर रही हो, देवि, प्रजा-रंजन राजा का कर्तव्य होते हुए भी वह जीवित व्यक्ति है। उसका व्यक्तित्व भी है। वह कोई निर्जीव पुतला नहीं। कौन बात उचित और कौन अनुचित है इसके निर्णय करने की उसे ईश्वर ने बुद्धि दी है। वरन् किसी के राजा होने पर उसमें ईश्वर का निवास हो जाता है, यह तक हमारे वेद, शास्त्र और पुराण कहते हैं। भगवान् ने गीता में अपनी विभूतियों को गिनाते हुए 'नराणांच नराधिपं' कहा है। 'ना विष्णुः पृथवीपतिः' शास्त्रों का एक दूसरा महा-वाक्य है। एक ओर यदि मैं प्रजा का प्रतिनिधि हूँ, उसका रंजन मेरा कर्तव्य है, तो दूसरी ओर मैं उस ईश्वर का अंश हूँ, जिसका समस्त सृष्टि में समान रूप से निवास है; जिसकी दृष्टि में ब्राह्मण, क्षत्रिय और चाण्डाल, चर्मकार में कोई भेद नहीं; जो सबके स्वत्वों की समान रूप से रक्षा करता है। एक ओर यदि मैं प्रजा-रंजन का ध्यान रखूँगा तो दूसरी ओर बहुमत के रंजन के लिए अल्पमत के स्वत्वों का अपहरण तो नहीं कर सकता। मुझे तो शक्ति रहते समाज के प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा की ओर ध्यान रखना होगा। इसके लिए अवसर पड़ने पर मुझे चाण्डाल से भी मिलना होगा और चर्मकार से भी। मैं एक दूसरे में भेद-विभेद नहीं कर सकता।

प्रकाशदेवी—किन्तु इसका परिणाम क्या निकल सकता है, आप जानते हैं, नाथ ?

चन्द्रापीड़—क्या ?

प्रकाशदेवी——क्रान्ति हो सकती है, देव, काश्मीर की प्रजा को ऐसे अवसर पर नये राजा चुनने का भी अधिकार है।

चन्द्रापीड़——इसकी मुझे चिन्ता नहीं, प्रिये, ऐसे अवसरों पर यदि प्रजा को नये राजा चुनने का अधिकार है तो वह सहर्ष चुने; मुझे राज-सिंहासन का कोई लोभ नहीं, पर जबतक मैं सिंहासन पर हूँ तबतक ऐसे अवसरों पर मैं भी अपनी बुद्धि, कर्तव्य और धर्म का बलिदान नहीं कर सकता।

प्रकाशदेवी——राज-सिंहासन की मुझे भी चिन्ता नहीं है, किन्तु... किन्तु मुझे चिन्ता है आपके...आपके शरीर की।

चन्द्रापीड़——शरीर की चिन्ता ! इस नाशवान शरीर की चिन्ता ? कर्तव्य और धर्म के पालन के समय इस नाशवान शरीर की चिन्ता तो मोह...महान् मोह है।

[नेपथ्य में कुछ कोलाहल होता है। दोनों उठकर द्वार के बाहर देखते हैं।]

लघु-यवनिका

सातवाँ दृश्य

स्थान——राजप्रासाद के बाहर की भूमि

समय——मध्याह्न

[समतल-भूमि है। बाईं ओर निकट ही राजप्रासाद का सिंहद्वार दिख पड़ता है, दाहिनी ओर दूर पर ऊँची ऊँची पर्वत-मालाएँ, जिनके अत्युच्च शिखर हिम से आच्छादित हैं और नीचे की चोटियाँ भिन्न-भिन्न रंगों के पुष्प-वृक्षों से। बीच में मार्ग और खुली हुई भूमि है। मार्ग रिक्त है, पर भूमि पर एक भारी भीड़ दृष्टिगोचर होती है; इसमें आदित्य-

शर्मा तथा पाँचवें दृश्य में बातें करने वाले नागरिक भी हैं। सिंहद्वार इतना ऊँचा है कि उसके भीतर हाथी सरलता से जा सकता है। द्वार के दोनों ओर दो दीर्घकाय पाषाण के सिंह प्रतिष्ठित हैं। दोनों सिंहों के एक एक ओर लंबी दालान है। दालानों की छत को पाषाण के स्थूल-स्तंभ उठाए हुए हैं। द्वार पर कई द्वाराधिप खड़े हैं। वे लोह का शिरस्त्राण और कवच धारण किये हुए हैं। आयुधों से भी सुसज्जित हैं। उनके बाएँ कन्धे पर धनुष है, जिसका ऊपरी सिरा उनके कान और नीचे का सिरा उनके पैर को स्पर्श कर रहा है। पीठ पर दाहिनी ओर बाणों से भरा हुआ तरकश है। कटि में चर्म का कमरपट्टा है, जिसमें बाईं ओर दो खड्ग लटके हुए हैं, एक लंबा और एक छोटा, किन्तु चौड़ा। कमरपट्टे के दाहिनी ओर कटार एवं परशु है। उनके हाथों में शल्य हैं। द्वाराधिपों के निकट ही दो दीर्घकाय श्याम रंग के जीवित श्वान बैठे हुए हैं। एक दालान में कुछ राजपुत्र, सामन्त आदि खड़े हैं; इन्हीं में चलितक, नृसिंह वर्मा और परशुराम भी हैं। एक दालान रिक्त है। उसमें कम्बल वस्त्र की मोटी बिछावन बिछी है और उस बिछावन पर सुवर्ण की रत्न-जटित आसंदी रखी है। मध्याह्न के सूर्य से सारा दृश्य आलोकित है, किन्तु सूर्य दिख नहीं पड़ता। सिंहद्वार, दालान इत्यादि की छाया भूमि पर पड़ रही है, अर्थात् भूमि पर खड़े होने वाले की छाया सिंहद्वार या दालानों पर नहीं पड़ती। रैदास नये वस्त्र पहने हुए जल्दी जल्दी आता है और बिना किसी ओर देखे हुए वह ज्योंही सिंहद्वार की ओर बढ़ता है त्योंही उसे एक द्वाराधिप हाथ उठाकर रोक देता है। रैदास चौंक सा पड़ता है और जन-समुदाय में अट्टहास की ध्वनि होती है। चलितक सिंहद्वार के भीतर जाता है।]

नृसिंह वर्मा—(आगे बढ़कर, दूसरी दालान की ओर संकेत कर) रैदास, तुम उस दालान के सामने बाहर खड़े रहो, परमभट्टारक तुमसे यहीं भेंट करेंगे।

परशुराम—(आगे बढ़कर, व्यंग भरे स्वर में) क्या आप सिंहद्वार

के भीतर प्रवेश करने की कल्पना कर रहे थे ?

[जन-समुदाय में फिर अट्टहास होता है । नृसिंह वर्मा क्रोध से परशुराम की ओर देखता है और उसके कान में कुछ कहता है । दोनों फिर यथा स्थान खड़े हो जाते हैं । आदित्य शर्मा का मुख क्रोध से तमतमा उठता है, पर वह कुछ बोलता नहीं । रैदास के सारे उत्साह पर मानो ठंडा पानी पड़ जाता है । उसका मुख अत्यधिक झुक जाता है । वह नीचा मुख किये हुए धीरे धीरे चलकर दालान के नीचे की भूमि पर दूर, एक ओर, चुपचाप खड़ा हो जाता है । चन्द्रापीड़ चलितक के साथ सिंहद्वार के बाहर आता है । उसके आगे याष्टिक है और पीछे आठ शरीर-रक्षक । याष्टिक कम्बल वस्त्र का श्वेत लंबा कंचुक (एक प्रकार का अँगरखा) पहने है । उसके सिर पर श्वेत ही पाग है । सुनहरी कमरपट्टे के बाईं ओर खड्ग है । बाएँ हाथ में एक मोटी सुवर्ण की छड़ी है और दाहिने हाथ में शंख। शरीर-रक्षकों की वेष-भूषा द्वाराधिपों के सदृश है । उनके हाथों में शल्य भर नहीं है। याष्टिक की शंख-ध्वनि सुनते ही जयघोष होता है—'परमभट्टारक परममाहेश्वर परमेश्वर चन्द्रापीड़ देव की जय।' द्वाराधिप अपने अपने शल्यों को मस्तक पर लगा राजा का अभिवादन करते हैं; कुलपुत्र, सामन्त, जनता इत्यादि अपने मस्तकों को अत्यधिक झुका। चन्द्रापीड़ सिर झुका, सारे अभिवादनों का उत्तर दे, रिक्त दालान पर की आसन्दी पर बैठता है । उसके एक ओर चलितक और दूसरी ओर याष्टिक खड़े हो जाते हैं; शरीर-रक्षक शयन के पीछे । रैदास पृथ्वी पर सिर टिका राजा का अभिवादन करता है ।]

चन्द्रापीड़—(रैदास के अभिवादन का उत्तर देते हुए) तुम्हारा ही नाम रैदास है ?

रैदास—(हाथ जोड़कर) हाँ, परमभट्टारक ।

चन्द्रापीड़—त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर के घेरे में तुम्हारा गृह आता है ?

रैदास—गृह नहीं, श्रीमान्, झोपड़ा।

चन्द्रापीड़—झोपड़ा सही। तुम उसे नहीं देना चाहते ?

रैदास—नहीं, महाराज।

चन्द्रापीड़—नहीं देने के कारण ?

रैदास—कारण...कारण, श्रीमान्, कारण...कारण तो एक ही है, महाराज, वह मेरा, मेरे पूर्व पुरुषों का जन्म-स्थल है। हम पीढ़ियों से उसमें रहे हैं। वह हमारे सारे सुख-दुख के इतिहास से...

[जन-समुदाय में अट्टहास। अट्टहास के बीच 'इतिहास' शब्द जोरों से सुन पड़ता है।]

आदित्य शर्मा—चुप रहो।

चन्द्रापीड़—(क्रोध से ऊँचे स्वर में) चुप।

चलितक—(ऊँचे स्वर में) शान्ति, शान्ति।

[पूर्ण शान्ति हो जाती है।]

चन्द्रापीड़—(रैदास से) हाँ, कह चलो, रैदास, कारण कह चलो।

रैदास—(भर्राये हुए स्वर में) कोई कारण नहीं है, परमभट्टारक, कोई कारण नहीं। आप शक्तिशाली हैं, मैं हूँ एक अस्पृश्य, छोटा सा मनुष्य। आप उस झोपड़े को ले सकते हैं, महाराज ले लें।

चन्द्रापीड़—रैदास, मुझे यदि तुम्हारा झोपड़ा अपनी शक्ति का उपयोग कर लेना होता तो मैं तुम्हें इस प्रकार बुलवाता ?

रैदास—इस किंकर को बुलवाकर परमभट्टारक ने महान् अनुग्रह किया है, परन्तु...परन्तु...श्रीमान्, शरीर रहते, मेरे कुटुंब के एक व्यक्ति के रहते भी मैं उस झोपड़े को इच्छा से न दे सकूँगा।

जन-समुदाय के कुछ व्यक्ति—धिक्कार है! धिक्कार है!

आदित्य शर्मा—(जोर से) चुप रहो, चुप।

चन्द्रापीड़—(क्रोध से) चुप।

चलितक—शान्ति, शान्ति।

[फिर पूर्ण शान्ति हो जाती है, पर रैदास का मुख क्रोध से तमतमा उठता है ।]

चन्द्रापीड़—(शान्ति से) रैदास, तुम कदाचित् उत्तेजित हो उठे हो। तुमको विश्वास रखना चाहिए कि बलपूर्वक तुम्हारा झोपड़ा राज्य-सत्ता कदापि न लेगी; किन्तु तुम्हें यह भी सोचना चाहिए कि जिस कार्य के लिए तुम्हारा झोपड़ा माँगा जारहा है, वह भी एक महान् कार्य है। त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर प्रजा के प्रत्येक जन के लिए महत्त्व की वस्तु है; तुम्हारे लिए भी।

रैदास—मेरे लिए ? नहीं, श्रीमान्, उनके लिए हो सकती है, जो मन्दिर में दर्शन करने, वहाँ भगवान् का पूजन करने के अधिकारी हैं, हम तो अस्पृश्य हैं, महाराज।

चन्द्रापीड़—(विचारते हुए) ठीक तो तुम्हारे झोपड़े न देने का एक कारण तो यह हुआ; और कोई कारण ?

रैदास—(जल्दी से) नहीं, नहीं, परमभट्टारक, न यह कारण है, न और कोई कारण। मेरा इतना ही नम्र निवेदन है कि हम लोग जीवित रहते उस स्थल से विलग न हो सकेंगे। मन्दिर सभी के लिए महत्त्व की वस्तु है। यदि कोई उसके कार्य में बाधक होते हैं, तो वे दण्ड पाने के योग्य हैं। आप हमें दण्ड दें, महाराज, और राजसत्ता उस झोपड़े को बलपूर्वक ले ले।

चन्द्रापीड़—मुझे यह नहीं करना है, रैदास, नहीं तो मैं तुम्हें यहाँ न बुलाता। आज पर्यन्त किसी राजा ने किसी चर्मकार को राजप्रासाद में बुलाया है, किसी राजा ने चर्मकार से संभाषण किया है ?

[इसी समय एक श्वान उठकर धीरे धीरे सिंहद्वार के भीतर जाने लगता है। कोई उसे नहीं रोकता। रैदास एकटक उसकी ओर देख पागल सा हो जाता है। उसके ओष्ठ फड़कने लगते हैं, और आँखें चढ़-सी जाती हैं।]

रैदास—(एकाएक उन्माद के स्वर में) आपने...आपने, श्रीमान्, एक नयी...हाँ, हाँ, सर्वथा नयी बात की है। आपने एक चर्मकार को राजप्रासाद...राजप्रासाद में, नहीं, राजप्रासाद को बुलवाया है। आप ...आप उस चर्मकार से संभाषण कर रहे हैं। ठीक...ठीक, परन्तु ...परन्तु किस प्रकार...किस प्रकार, परमभट्टारक, जिस...जिस प्रकार कोई भी सवर्ण आर्य अस्पृश्य से बात कर सकता है। **(सिंहद्वार के भीतर जाते हुए कुत्ते की ओर संकेत कर)** वह...वह देखिए...वह श्वान..वह पशुओं में निकृष्ट, निकृष्टतम श्वान आपके सिंहद्वार से आपके राजप्रासाद में प्रवेश कर रहा है। कौन...कौन रोकता है, उसे परम भट्टारक ? आपने मुझे बुलाया है...बड़ा अनुग्रह किया है, महाराज, पर मैं...मैं मनुष्य होते हुए भी उस श्वान...उस कुत्ते से भी निम्न... निम्नतम श्रेणी का हूँ। तभी...तभी तो मुझसे राजप्रासाद के बाहर मिलने की यह योजना की गयी है। फिर वह...वह भी ऐसे...ऐसे स्थान पर जहाँ मेरी छाया आप पर ही नहीं, किसी राजपुत्र, किसी सामन्त, किसी सवर्ण, अरे ! निर्जीव राजप्रासाद पर भी न पड़ने पावे। **(जन-समुदाय की ओर देखकर)** यह...यह सारा सवर्ण-जन-समुदाय मुझ पर अट्टहास, हाँ, श्रीमान्, अट्टहास करता है। मेरे छोटे से इतिहास को, अरे ! सुख-दुख के इतिहास को हँसी, हाँ, हँसी में उड़ाने की वस्तु समझता है, मुझे धिक्कारता है...परमभट्टारक धिक्कारता है। इस सबसे अच्छा, कहीं अच्छा था, श्रीमान्, कि आप मुझे बुलवाने का सम्मान ही न देते। मैं अपने झोपड़े में भला था, महाराज, वहाँ इतनी...इतनी आँखें तो मुझे नहीं घूरती थीं। वहाँ...वहाँ इतने स्वर तो एक साथ मेरी हँसी नहीं उड़ाते थे। त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर, परमभट्टारक, वह...वह भगवान् का मन्दिर नहीं बनाया जा रहा है। श्रीनगर उस ओर बढ़ रहा था, श्रीमान्, इसलिए...इसलिए हम अस्पृश्यों को हमारी धार्मिक भावनाएँ उभाड़कर, वहाँ से हटाने, वहाँ से भगाकर किसी निर्जन स्थान

में, किसी वन या पहाड़ी पर पशुओं के सदृश रखने का वह आयोजन... है, षड्यंत्र है। (सब कुछ कह डालने से उसका हृदय हलका सा हो जाता है और वह एकाएक चुप हो जाता है। फिर चौंककर) हैं! हैं! मैं क्या...क्या क्या कह गया, परमभट्टारक। (गिड़गिड़ाकर) क्षमा... क्षमा कीजिए, महाराज, नहीं नहीं, दण्ड...दण्ड दीजिए, श्रीमान्। मैं...मैं पूरी...कदाचित् थोड़ी भी चेतना में नहीं...नहीं था।

चन्द्रापीड़—(एकाएक खड़े होकर, धीरे धीरे) रैदास, तुम्हारे साहस, तुम्हारी स्पष्टवादिता पर मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। (शरीर-रक्षकों की ओर घूम कर) शरीर-रक्षको! तुम में से चार रैदास के साथ जाओ; सकुशल रैदास को उसकी झोपड़ी में पहुँचाओ और दूसरी आज्ञा तक वहीं, उसकी रक्षा में, रहो।

[चन्द्रापीड़ सिंहद्वार की ओर बढ़ता है। याष्टिक आगे आगे और चार शरीर-रक्षक पीछे पीछे चलते हैं। फिर से अभिवादन और जय जयकार होते हैं। जन-समुदाय में जाने की खलबली-सी मच जाती है। राजा के चार शरीर-रक्षक रैदास के पास जाते हैं। रैदास नीचा मुख किये हुए जिधर से आया था उसी ओर जाने लगता है। परशुराम अत्यन्त क्रूर दृष्टि से उसे घूरता है। चलितक तथा अन्य राजपुत्र, सामन्त आदि भी जाने लगते हैं।]

लघु-यवनिका

आठवाँ दृश्य

स्थान—तीसरे दृश्य वाला

समय—मध्याह्न के उपरान्त

[चन्द्रापीड़ सिंहासन तथा मिहिरदत्त और चलितक आसंदियों पर बैठे हुए हैं।]

चन्द्रापीड़—अब मेरे सामने त्रिभुवन स्वामी के मन्दिर का प्रश्न, रैदास के झोपड़े लेने का प्रश्न नहीं है, मेरे सम्मुख समस्या है सिंहद्वार पर रैदास का जो अपमान हुआ उसके परिमार्जन की। मैंने उसे बुलाया था। मेरे निमन्त्रण पर वह राजप्रासाद को आया था। आपके परंपरागत कहे जाने वाले नियमों, नहीं नहीं, रीतियों, रूढ़ियों का मुझ पर भी प्रभाव था। मैंने निर्बलता की। राजप्रासाद के बाहर, ऐसे स्थान पर जहाँ उसकी छाया भी मुझ पर न पड़ सके, मैं उससे मिला। एक नयी बात हो रही थी, अतः जन-समुदाय का एकत्रित हो जाना स्वाभाविक था। जब मुझ तक पर परंपरागत रीतियों और रूढ़ियों का प्रभाव था, तब जन-समुदाय पर तो उनका प्रभाव रहना एक साधारण सी बात है। मैंने उससे सिंहद्वार के बाहर मिल उसके अपमान का आयोजन किया। मैंने उसका अपमान किया, जन-साधारण से उसका अपमान कराया। उसके अन्तःकरण में सवर्णों के अस्पृश्यों के साथ व्यवहार का लावा भरा हुआ था। उसमें हलचल मच गयी। वह श्वान सिंहद्वार में क्या घुसा, उसके हृदय में विस्फोट हो गया। (कुछ रुककर) आह! कैसा उसका मुख था उस समय, कैसी थी उसकी मुद्रा! किस प्रकार फड़क रहे थे उसके ओष्ठ और कैसी कराल थी उसकी दृष्टि! उसके ओष्ठों से शब्द...शब्द नहीं निकल रहे थे, ज्वालामुखी का मुख खुल गया था, उसके मुख से निकल रही थीं ज्वालाएँ और फूट पड़ा था लावा। चलित दृष्टि रूपी वायु से वे ज्वालाएँ, वह लावा और प्रचंड हो रहे थे। सारे सवर्ण आर्यों को भस्म कर डालने की उन ज्वालाओं, उस लावा में क्षमता थी। राजगुरु एवं सर्वाधिकारी, उन ज्वालाओं, उस लावा से मेरा हृदय जल रहा है, और...और जब तक उसके इस अपमान का परिमार्जन न हो जायगा, तब तक...तब तक क्षण भर के लिए भी मुझे शान्ति न

मिलेगी। (फिर कुछ रुककर) बताइए क्या...क्या उपाय है इसका ? गुरुदेव, आपने धर्मशास्त्रों का जैसा अध्ययन किया है वैसा काश्मीर में किसी ने नहीं, महत्तम, आपने न्याय, मीमांसा, आदि का जैसा अन्वेषण किया है, दूर दूर तक किसी ने नहीं, निकालिए...निकालिए मेरी शान्ति का कोई उपाय !

[चन्द्रापीड़ का मस्तक झुक जाता है। मिहिरदत्त और चलितक एक दूसरे को कनखियों से देखते हुए कुछ देर तक चुप रहते हैं, मानों एक दूसरे को नेत्रों से संकेत कर रहे हैं कि पहले तुम बोलो। अन्त में चलितक अपना गला साफ करता है।]

चलितक—(गला साफ करते हुए) महाराज, मेरे विनम्र मत से तो आपकी अशान्ति का जो कारण है, वह कारण ही अशान्ति का न होना चाहिए। अशान्ति का यदि कोई कारण हो सकता है, तो आपके सम्मुख उसका वह उद्दण्डतापूर्ण भाषण है, उसकी वह दृष्टि है, जिससे वह आपको और सारे समुदाय को देख रहा था। त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर के लिए अपना झोपड़ा देना अस्वीकृत करना ही उसकी धृष्टता की चरम सीमा थी, फिर श्रीमान् के सामने तो इस प्रकार की उद्दण्डता अक्षम्य है, परमभट्टारक। उसकी जिस जिह्वा ने उन शब्दों का उच्चारण किया है, वह काट डाली जानी चाहिए। उसकी जिन आँखों ने क्रूर दृष्टि से देखा है, वे फोड़ डाली जानी चाहिए। आपने उसके साथ अपने शरीर-रक्षकों को भेज दिया, अन्यथा जन-समुदाय ही उसे उचित पुरस्कार दे देता। महाराज, आप किसके अपमान का परिमार्जन करने का विचार कर रहे हैं ? अस्पृश्य को नागरिकता तक के अधिकार नहीं। उसका स्थान अब या तो श्मशान है, या कारागार। उसे ठिकाने पहुँचाने की आज्ञा हमें दीजिए और उसके झोपड़े को खुदवा, त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर पूर्ण करा, हार्दिक शान्ति का लाभ उठाइए।

मिहिरदत्त—महाराज, आमात्य सर्वथा सत्य कह रहे हैं। धर्मशास्त्र

के अनुसार अस्पृश्य से सवर्ण आर्यो के सदृश व्यवहार नहीं किया जा सकता। मैंने आपसे प्रातःकाल भी निवेदन किया था कि प्राणी अपने पूर्व जन्म के पाप, जन्म जन्मान्तरों के पाप के कारण अस्पृश्य जातियों में जन्म लेता है।

[चन्द्रापीड़ का मस्तक ऊपर नहीं उठता। चलितक और मिहिरदत्त एकटक चन्द्रापीड़ की ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

चन्द्रापीड़—(एकाएक सिर उठाकर, दोनों की ओर देखते हुए) तो मेरी शान्ति के लिए रैदास को दण्ड और उसका झोपड़ा बलपूर्वक ले त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर पूर्ण कराने के अतिरिक्त आपके पास कोई उपाय नहीं है?

चलितक—मेरा तो यही मत है। संभव है इससे आरंभ में आपको थोड़ी बहुत और अधिक अशान्ति हो जाय, किन्तु जब मन्दिर पूर्ण होने पर उसमें प्रतिष्ठित भगवान् की मूर्ति के आप दर्शन करेंगे तब आपको अवश्य शान्ति मिलेगी।

मिहिरदत्त—और वह स्थायी शान्ति होगी, परमभट्टारक।

चन्द्रापीड़—(व्यंगपूर्ण मुस्कराहट से) उस समय मुझे शान्ति मिलेगी और वह शान्ति....वह स्थायी शान्ति होगी! देखिए, गुरुदेव, और सर्वाधिकारी, मैंने पहले ही कह दिया है कि उसका झोपड़ा बलात् लेकर त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर नहीं बन सकता। या तो वह मन्दिर अब बनेगा ही नहीं और बनेगा तो अन्य किसी स्थान पर।

मिहिरदत्त—यह तो हो नहीं सकता, महाराज, जहाँ नींव-पूजन हुआ है, वहीं मन्दिर बनेगा, अन्यथा अतिवृष्टि या अनावृष्टि...

चन्द्रापीड़—(बीच ही में) मुझे इन अंध-परंपराओं पर विश्वास नहीं। जो ईश्वर घट घट का निवासी है, वह कभी यह न चाहेगा कि उसके किसी भी जीवित रूप को उसके मन्दिर के लिए अकारण, बिना किसी अपराध के, कष्ट दिया जाय, दण्ड दिया जाय, और यदि यह नहीं होता तो

दैवी-उत्पात हों। क्या मनुष्यों के सदृश ईश्वर को भी आप भेद-भाव वाला, अन्यायी मानते हैं? राजा में यदि ईश्वर का अंश है तो राजा को विना भेद-भाव के सबके स्वत्वों की रक्षा करनी ही होगी; और वह यह कभी न कर सकेगा यदि इस प्रकार की काल्पनिक अनर्गल दैवी-आपत्तियों में उसे विश्वास हो जायगा।

मिहिरदत्त—(कुछ उत्तेजित हो) महाराज, आप धर्म में अविश्वास करते हैं?

चन्द्रापीड़—नहीं, गुरुदेव, सच्चे धर्म में मेरा अखण्ड विश्वास है। [illegible]

[illegible] धर्म का तो कोई स्थान ही नहीं दिखता। इसीलिए मैं इसे धर्म नहीं, पाखंड मानता हूँ। इसीसे प्रभावित रहने के कारण मैं रैदास से उस प्रकार मिला, जिस प्रकार मुझे कदापि न मिलना चाहिए था। उसका अपमान हुआ है, और उसका परिमार्जन करना ही इस समय मेरा सच्चा धर्म है। आप लोगों से मैंने इसका उपाय पूछा। मेरी दृष्टि से आप लोग इसका उपाय नहीं बता सके। मैंने इसका उपाय सोचा है। जानते हैं आप क्या है?

मिहिरदत्त—क्या, श्रीमान्?

चलितक—क्या, महाराज?

चन्द्रापीड़—मैं उसे सिद्ध करना चाहता हूँ कि मैं उसे श्वान नहीं, किन्तु बराबरी का मानव मानता हूँ। मैंने राजप्रासाद को बुलाकर उसका अपमान किया है इसलिए अब मैं स्वयं उसके घर जाऊँगा।

चलितक—(चिल्लाकर) महाराज! महाराज!

मिहिरदत्त—(चिल्लाकर) श्रीमान्! श्रीमान्! (कुछ रुककर) तो आपने अब अधर्म करने का निश्चय ही कर लिया है। आपके जिस राज्य-काल की तुलना कलि-युग रहते हुए भी कृत-युग से की जाती थी,

उसे आप हलाहल कलि-युग बनाकर ही कदाचित् शान्ति लेंगे। शास्त्रों में कलि-युग के वर्णन में उसका मुख्य चिह्न वर्ण-व्यवस्था का नाश और सब का अधर्मी होकर एकाकार हो जाना लिखा है। वही...वही आप करने जा रहे हैं, परमभट्टारक। किन्तु...किन्तु...(चुप हो जाता है।)

चन्द्रापीड़—कह डालिए, कह डालिए, गुरुदेव, जो कुछ हृदय में हो कह डालिए।

मिहिरदत्त—(लंबी साँस लेकर) क्या कहूँ, श्रीमान्, क्या कहूँ? (कुछ रुककर) परन्तु...परन्तु कहना ही होगा, न कहने से तो और अनर्थ हो सकता है; और पहले से सचेत कर देना भी तो मेरा कर्तव्य है। (फिर कुछ रुककर) महाराज, आपका एक अस्पृश्य से मिलना, उससे संभाषण, हम लोगों ने, प्रजा ने, सह लिया, क्योंकि वह मर्यादाओं की रक्षा करते हुए था, किन्तु आपका एक अस्पृश्य के घर जाना हम धर्मावलंबी, आपकी धर्मभीरु-प्रजा कदापि न सह सकेगी।

चलितक—आप प्रजा की भावनाएँ कुछ देर पूर्व ही देख चुके हैं, परमभट्टारक।

चन्द्रापीड़—(कुछ विचारते हुए) देखिए, गुरुदेव एवं महत्तम, राजा यदि ईश्वर का अंश है तो, जो सामाजिक नियम, धार्मिक नहीं, सामाजिक, क्योंकि अस्पृश्यता को मैं केवल समाज का एक कुत्सित नियम मानता हूँ, दूसरों को बाँधते हैं, राजा को नहीं बाँध सकते। जब तक मैं सिंहासन पर हूँ मेरा प्रत्येक से व्यवहार सम-दृष्टि से ही होगा। मैंने रैदास को बुलवा उसका अपमान किया है, मुझे उसके घर जा उसका परिमार्जन करना ही होगा।

मिहिरदत्त—तब मैं कह देना चाहता हूँ, परमभट्टारक, कि मैं आपसे सहयोग न कर सकूँगा।

चलितक—(लंबी साँस लेकर) और हम राज्य के कायस्थगण भी नहीं।

चन्द्रापीड—क्या, युवक ?

आदित्य शर्मा—आप जहाँ जा रहे है, महाराज, वहाँ मै आपके सग याष्टिक के रूप मे चलने को आया हूँ। मेरा अकेला आपके सग चलना राज्य के सारे युवको का चलना है।

चन्द्रापीड़—(मुस्कराते हुए) अच्छा ?

आदित्य शर्मा—हाँ, परमभट्टारक, आप इसमे थोडी सी भी अति-शयोक्ति न समझिए। यह श्रीनगर काश्मीर का प्रतिनिधि है, श्रीनगर के सच्चे प्रतिनिधि है युवक, और उन युवको का प्रतिनिधि हूँ मै।

चन्द्रापीड़—(आदित्य शर्मा के स्कंधो को थपथपाते हुए) अच्छा, अच्छा।

आदित्य शर्मा—श्रीमान्, जिस महान् कार्य को आपने हाथ मे लिया है उसमे श्रीनगर का एक एक युवक आपके साथ है। यदि यहाँ के वृद्धो ने तरुणो को नाना प्रकार के भय दिखा-दिखाकर न रोका होता तो **(चारो ओर की भूमि की ओर संकेत कर)** आज इस भूमि मे, यहाँ के युवको के कारण, शूच्यग्र पृथ्वी भी रिक्त न होती। वे सब आपके साथ रैदास के घर उस पाप का प्रायश्चित्त करने चलते जो उनके पिताओ तथा अन्य नातेदारो ने आज मध्याह्न मे उसका अपमान कर किया था। क्या कहूँ ? उनका हृदय आपके साथ होने पर भी वे यहाँ नही है, पर मै, उनका प्रतिनिधि, मै आपके सग हूँ।

चन्द्रापीड़—तुम वडे तेजस्वी जान पडते हो, युवक ?

आदित्य शर्मा—आपकी कृपा है कि आप मुझे ऐसा समझते है।

चन्द्रापीड़—तुम रैदास का गृह जानते हो ?

आदित्य शर्मा—हाँ, हाँ, काश्मीर मे ऐसा कौन सा स्थान है जो मै नही जानता।

चन्द्रापीड़—अच्छा। तो फिर हम चले न ?

आदित्य शर्मा—जो आज्ञा।

प्रतिनिधि हैं, राजा के अस्पृश्य के घर जाने का अर्थ होता है—सारी प्रजा का उसके घर जाना।

आदित्य शर्मा—और वह अस्पृश्य तो प्रजा के बाहर ठहरा।

दूसरा वृद्ध ब्राह्मण—आदित्य...आदित्य...तुम...तुम भी सीमा का उल्लंघन कर रहे हो...ब्राह्मण...ब्राह्मण होकर तुम्हारी ऐसी वृत्ति भी न सही जा सकेगी।

आदित्य शर्मा—परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि रैदास इस राज्य की प्रजा है या नहीं? राजा उसका भी प्रतिनिधि है अथवा नहीं?

एक नागरिक—राजा नागरिकों का प्रतिनिधि है; जिन वर्णों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त हैं, उन मनुष्यों का, अस्पृश्यों का नहीं।

आदित्य शर्मा—तो सवर्णों और अस्पृश्यों के सिवा मानव कोई वस्तु नहीं। आपकी व्याख्या के अनुसार अस्पृश्य मनुष्य नहीं हैं।

तीसरा वृद्ध ब्राह्मण—देखो जी, इस मूर्ख से वाद-विवाद करने से कोई लाभ न होगा। छोड़ो इसे। अपने कर्तव्य का निश्चय करने का समय आ पहुँचा। यदि हमने यह सब सह लिया तो परिणाम यह निकलेगा कि वह वर्ण-व्यवस्था, जिस पर सारी आर्य-संस्कृति अवलंबित है, नष्ट हो जायगी। आज राजा अस्पृश्य के घर जाता है, कल अस्पृश्य हमारे घरों में घुसेंगे। स्पर्श-दोष की समाप्ति के पश्चात् सह-भोजन आरंभ होगा और फिर विवाह भी। ब्राह्मण की कन्या चाण्डाल के घर में ब्याही जायगी और चाण्डाल की कन्या ब्राह्मण के गृह में आयगी। वर्णसंकर उत्पन्न होंगे और सारा समाज...

दूसरा नागरिक—अरे, बन्धु, सच तो यह है कि यह राजा भी वर्ण-संकर है। जानते नहीं इसकी माँ एक वणिक की पुत्री ही नहीं, दूसरे वणिक की पत्नी भी थी। इसके पिता ने उसका अपहरण कर स्वयं उससे विवाह किया। ऐसे पति-पत्नी की संतान से कभी धर्म-रक्षा होना संभव है?

आदित्य शर्मा—परन्तु, बन्धुओ, कल तो तुम्हीं कह रहे थे कि काश्मीर में आज पर्यन्त कभी ऐसा राजा नहीं हुआ। कलि-युग रहते हुए भी जबसे यह सिंहासन पर बैठा है, सत्-युग आ गया है।

दूसरा नागरिक—वह मेरी भूल थी। छोटी छोटी बातों में मैंने उसका प्रजा-रंजन देखा था और उसने मेरी आँखों पर पट्टी चढ़ा दी थी। आज पहले पहल बड़ी बात आयी। पहली ही बार में वह पट्टी चिथड़े चिथड़े होकर गिर पड़ी। चार वर्षों का एक युग ही तो इसके राज्य को हुआ है। इतने थोड़े काल में किसी के कार्यों के ठीक परिणाम की आलोचना नहीं की जा सकती। अब तो मेरा मत है कि यदि यह राजा रहा तो घोर हलाहल कलि-युग आ जायगा। सब एकमय हो जायँगे। ब्राह्मण और क्षत्रिय भी चाण्डाल और चर्मकार।

आदित्य शर्मा—क्यों, ऐसा क्यों सोचते हो, यह क्यों नहीं विचारते कि चाण्डाल और चर्मकार भी ब्राह्मण और क्षत्रिय हो...

चौथा ब्राह्मण—(क्रोध से) चाण्डाल और चर्मकार ब्राह्मण और क्षत्रिय! शिव! शिव! शिव!

तीसरा नागरिक—हर! हर! हर!

[एक और नागरिक का दौड़ते हुए प्रवेश।]

आगन्तुक—अरे...अरे...सुना...सुना...तुम लोगों ने? सारे कायस्थों ने राजा के संग असहयोग किया है। गजों के महावतों, अश्वों के अश्वपालकों, रथों के सारथियों, शिविका के शिविका-वाहकों, सबने, चन्द्रापीड़ को अपने अपने वाहनों पर उस चर्मकार के गृह ले जाना अस्वीकृत कर दिया।

पहला ब्राह्मण—(अत्यन्त प्रसन्न होकर) धन्य है! धन्य है! भगवन्! परमात्मन्! आप...आपकी अभी...अभी इस देश पर सुदृष्टि है, अवश्य है।

पहला नागरिक—अभी धर्म का चौथा पैर है। ऐसा कलि-युग नहीं

आ गया है कि वह भी नष्ट हो गया हो।

दूसरा ब्राह्मण—क्रान्ति का इससे अच्छा अवसर नहीं, जब राज्य के कायस्थों तक ने राजा से असहयोग किया है।

तीसरा ब्राह्मण—इस अवसर पर प्रजा कायस्थों का साथ देगी।

आदित्य शर्मा—वृद्ध प्रजा, वाचाल प्रजा, अकर्मण्य प्रजा। अधिकारों की केवल घोषणा करने वाली प्रजा। जानते हो अकर्मण्यता रहते हुए निरन्तर अधिकारों की घोषणा अधिकार खोने का सच्चा, सीधा और सबसे सरल मार्ग है। युवक प्रजा राजा का संग देगी, राजा का।

दूसरा नागरिक—(अत्यंत क्रोध से) लेकिन चन्द्रापीड़ राजा रहा ही नहीं। ऐसे अधर्म-संकल्प के पश्चात् कोई राजा रह सकता है? देखें कौन युवक उसका और तुम्हारा साथ देता है।

तीसरा नागरिक—हाँ, जो इस पाप कर्म का साथी होगा, उसे हम घर से निकाल देंगे; न खाने को देंगे, न वस्त्र।

कुछ व्यक्ति—(एक साथ) अवश्य, अवश्यमेव।

आदित्य शर्मा—(युवकों से) बोलो, युवको! बोलो, परमभट्टारक परममाहेश्वर परमेश्वर चन्द्रापीड़ देव की जय।

[वृद्धों के भय के कारण कोई युवक नहीं बोलता। लोग अट्टहास करते हैं।]

आदित्य शर्मा—(क्रोध से) अरे! युवकों...युवकों तक का ऐसा पतन!

तीसरा ब्राह्मण—पतन तेरा है और तेरे उस अधर्मी राजा...नहीं ...नहीं, चन्द्रापीड़ का।

आदित्य शर्मा—(विचारते हुए साहस से) कोई चिन्ता नहीं, थोड़ी भी नहीं। अन्त में सत्य की विजय होकर रहेगी।

चौथा ब्राह्मण—हाँ, सो तो होगी ही। जाए तो चन्द्रापीड़ उस

चर्मकार के घर। उसी...उसी क्षण क्रान्ति होगी, चन्द्रापीड़ की ग्रीवा की अधिकार-स्रज उतार वह अधिकार-स्रज किसी दूसरे की ग्रीवा में डाली जायगी। और उस क्रान्ति का नेतृत्व करेंगे ब्राह्मण।

आदित्य शर्मा—कोई चिन्ता नहीं...कोई चिन्ता नहीं। सत्य-रक्षा के लिए यदि उस क्रान्ति में महाराज का रक्त बहेगा तो उन्हीं के साथ ब्राह्मणों के इस पाप के प्रायश्चित्त में एक ब्राह्मण का भी रक्त बहेगा। ...यह आदित्य चाहे अकेला, सर्वथा अकेला क्यों न हो,...अन्त...अन्त तक सच्चे धर्म्मात्मा, सत्य के सच्चे अनुयायी परमभट्टारक, परममाहेश्वर परमेश्वर चन्द्रापीड़...हाँ, चन्द्रापीड़ देव का साथ देगा।

[आदित्य शर्मा का शीघ्रता से प्रस्थान। सब लोग जिस ओर आदित्य शर्मा गया है उस ओर देखते हैं; युवक तृषित दृष्टि से। कोई कोई युवक दो चार पग उस ओर बढ़ाते भी हैं, पर अपने बड़ों की ओर देख, भयभीत हो, फिर रुक जाते हैं। ऐसे युवकों की ओर वृद्ध अत्यंत क्रूर-दृष्टि से देखते हैं।]

लघु-यवनिका

दसवाँ दृश्य

स्थान—दूसरे और छठवें दृश्यवाला

समय—अपराह्न

[चन्द्रापीड़ मस्तक पर किरीट लगा रहा है। प्रकाशदेवी का शीघ्रता से प्रवेश।]

प्रकाशदेवी—नाथ, आप जाने के लिए प्रस्तुत हैं?

चन्द्रापीड़—बस, मुझे केवल पदत्राण और पहनना है।

प्रकाशदेवी—भोजन न होंगे?

चन्द्रापीड़—आज मेरे जीवन का सबसे महान् दिवस है न, प्रिये ? आज व्रत रहेगा।

प्रकाशदेवी—किस वाहन पर पधार रहे हैं, प्राणेश ?

चन्द्रापीड़—जो मुझे ईश्वर ने दिये हैं, अपने पाँव।

प्रकाशदेवी—और अकेले जा रहे हैं, नाथ ?

चन्द्रापीड़—भगवान् के अतिरिक्त और कौन मेरे साथ है ?

प्रकाशदेवी—एक और व्यक्ति...एक और व्यक्ति। आपकी सहधर्मिणी आपके संग है।

चन्द्रापीड़—(प्रसन्नता से) ऐसा...ऐसा, प्राणेश्वरी ? किन्तु ...किन्तु जो मैं कर रहा हूँ, वह ठीक है, इसका तुम्हें विश्वास हो गया है, इस कारण से, अथवा पति जो कुछ करता है, उसमें स्त्री को साथ देना ही चाहिए, इस कारण से ?

प्रकाशदेवी—दोनों कारणों से, नाथ, आज प्रातःकाल मैंने जो कुछ कहा था उस पर मैंने पुनः विचार किया और इस विचार के पश्चात् मेरा विश्वास हो गया है कि जो कुछ आप कर रहे हैं, वही ठीक है। न जानते हुए भी कदाचित् सिंहासन का मुझे लोभ था। शरीर का तो जानते हुए भी मोह था। दोनों ही कर्तव्य के सम्मुख तुच्छ...तुच्छाति तुच्छ वस्तुएँ हैं। फिर पति का साथ देना आर्य-पत्नी का धर्म ही है।

चन्द्रापीड़—(गद्गद स्वर से) तुम्हारे इस समय के इन वाक्यों को सुनकर मुझे जो हर्ष हो रहा है, वह मैं शब्दों में नहीं कह सकता।

प्रकाशदेवी—नाथ, मैं याष्टिक के रूप में आपके आगे आगे चलूँगी।

चन्द्रापीड़—तुम्हारी सद्भावनाएँ मेरे संग हैं, यही यथेष्ट है, प्रिये। तुम्हारा साथ चलना संभव नहीं।

प्रकाशदेवी—क्यों, इसमें क्या बाधा है ?

चन्द्रापीड़—यह उचित मर्यादा का निरर्थक उल्लंघन होगा। महान् अवसरों पर महादेवी राजा के साथ सिंहासनासीन होती है;

वह याष्टिक के रूप में उसके आगे आगे नहीं चल सकतीं ।

प्रकाशदेवी—किन्तु . . . किन्तु, प्राणेश . . .

चन्द्रापीड़—(बीच ही में) किन्तु परन्तु कुछ नहीं, प्रिये, तुम्हारे इस समय के वाक्यों से जो बल, जो पराक्रम मुझे मिला है, वह तुम्हारे साथ न रहने पर भी मेरे साथ रहेगा । तुम सच्ची आर्य-पत्नी हो, सच्ची महादेवी हो, प्रिये । (प्रकाशदेवी को खींचकर हृदय से लगा लेता है ।)

लघु-यवनिका

ग्यारहवाँ दृश्य

स्थान—सातवें दृश्यवाला

समय—अपराह्न

[द्वाराधिपों के अतिरिक्त केवल आदित्य शर्मा वहाँ दिखायी दे रहा है । आदित्य शर्मा मार्ग पर इधर उधर घूम रहा है । उसकी मुद्रा और चाल में एक विचित्र प्रकार की प्रसन्नता दिख पड़ती है । उसके हाथ में एक शंख है । चन्द्रापीड़ प्रासाद से बाहर निकलता है । वह अकेला है । द्वाराधिप शल्य मस्तक पर लगा उसका अभिवादन करते हैं, पर उसके संग कोई नहीं चलता । ज्योंही आदित्य शर्मा चन्द्रापीड़ को देखता है त्योंही वह जल्दी से उसके निकट बढ़कर शंख बजाता है ।]

चन्द्रापीड़—(आश्चर्य से) तुम कौन हो, युवक ?

आदित्य शर्मा—काश्मीर के तरुणों का प्रतिनिधि, एक ब्राह्मण, परमभट्टारक ।

चन्द्रापीड़—(आश्चर्य से) अच्छा, कहो क्या कहना है ?

आदित्य शर्मा—कहना कुछ नहीं, परमभट्टारक, आपके संग मुझे भी कुछ करना है ।

चन्द्रापीड़—क्या, युवक ?

आदित्य शर्मा—आप जहाँ जा रहे हैं, महाराज, वहाँ मैं आपके संग याष्टिक के रूप में चलने को आया हूँ। मेरा अकेला आपके संग चलना राज्य के सारे युवकों का चलना है।

चन्द्रापीड़—(मुस्कराते हुए) अच्छा ?

आदित्य शर्मा—हाँ, परमभट्टारक, आप इसमें थोड़ी सी भी अतिशयोक्ति न समझिए। यह श्रीनगर काश्मीर का प्रतिनिधि है, श्रीनगर के सच्चे प्रतिनिधि हैं युवक, और उन युवकों का प्रतिनिधि हूँ मैं।

चन्द्रापीड़—(**आदित्य शर्मा के स्कंधों को थपथपाते हुए**) अच्छा, अच्छा।

आदित्य शर्मा—श्रीमान्, जिस महान् कार्य को आपने हाथ में लिया है उसमें श्रीनगर का एक एक युवक आपके साथ है। यदि यहाँ के वृद्धों ने तरुणों को नाना प्रकार के भय दिखा-दिखाकर न रोका होता तो (**चारो ओर की भूमि की ओर संकेत कर**) आज इस भूमि में, यहाँ के युवकों के कारण, शूच्यग्र पृथ्वी भी रिक्त न होती। वे सब आपके साथ रैदास के घर उस पाप का प्रायश्चित्त करने चलते जो उनके पिताओं तथा अन्य नातेदारों ने आज मध्याह्न में उसका अपमान कर किया था। क्या कहूँ ? उनका हृदय आपके साथ होने पर भी वे यहाँ नहीं हैं, पर मैं, उनका प्रतिनिधि, मैं आपके संग हूँ।

चन्द्रापीड़—तुम बड़े तेजस्वी जान पड़ते हो, युवक ?

आदित्य शर्मा—आपकी कृपा है कि आप मुझे ऐसा समझते हैं।

चन्द्रापीड़—तुम रैदास का गृह जानते हो ?

आदित्य शर्मा—हाँ, हाँ, काश्मीर में ऐसा कौन सा स्थान है जो मैं नहीं जानता।

चन्द्रापीड़—अच्छा। तो फिर हम चलें न ?

आदित्य शर्मा—जो आज्ञा।

[आदित्य शर्मा जोर से शंख वजाता और वड़े उत्साह से आगे आगे चलता है। चन्द्रापीड़ मुस्कराते हुए उसके पीछे पीछे चलता है।]

लघु-यवनिका

बारहवाँ दृश्य

स्थान—पाँचवें और नवें दृश्यवाला

समय—अपराह्न के उपरान्त

[सारा मार्ग सूना पड़ा है। घरों के द्वार वन्द हैं। रहनेवालों ने जानबूझकर हड़ताल की है, परन्तु रहने वाले अपने अपने गृह में छिपे हैं। यह इसलिए ज्ञात होता है कि किसी किसी गृह के झरोखे, खिड़की, द्वार इत्यादि में से धीरे से कभी कभी कोई वाहर झाँक लेता है और फिर जल्दी से अपना मुख भीतर छिपा लेता है। इनमें पुरुष, स्त्रियाँ, वृद्ध, युवक, वालक सभी हैं। नेपथ्य में शंख वजता है। अव तो वाहर जल्दी जल्दी झाँककर भीतर मुख छिपा लेने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। एक ओर से आगे आगे आदित्य शर्मा और पीछे पीछे चन्द्रापीड़ का प्रवेश।]

आदित्य शर्मा—(शंख बजाकर) सुनो, पुरवासियो! प्रजा में एक मनुष्य का आज जो अकारण अपमान हुआ है, जो अपमान यहाँ के उच्च वर्णों में उत्पन्न कहे जाने वाले व्यक्ति आप लोगों ने किया है, उसका परि-मार्जन करने हमारे राजा पैदल, अपने पाँवों से, उसके गृह जा रहे हैं। काश्मीर में कभी कोई ऐसा राजा हुआ? ऐसे महान् हमारे नरेश...

चन्द्रापीड़—वस, वस, वहुत हुआ, युवक, आगे...आगे वढ़ो।

[आदित्य शर्मा शंख वजा आगे वढ़ता है; चन्द्रापीड़ उसके पीछे पीछे। ज्योंही ये लोग थोड़ा सा आगे वढ़ते हैं त्योंही जल्दी से एक गृह का द्वार

खुलता है और एक युवक निकलकर आदित्य शर्मा के संग हो जाता है। कुछ और आगे बढ़ने पर एक गृह का द्वार और खुलता है और इससे दो युवक निकल चन्द्रापीड़ के पीछे पीछे चलने लगते हैं और अब तो गृहों के खुलने और युवकों के निकलने का ताँता सा लग जाता है। जयघोष आरंभ होता है। वृद्ध छिप छिप कर, इस जुलूस को देख, नेत्रों से इस पर अग्नि सी बरसा फिर अपने मुख छिपा लेते हैं। युवकों की संख्या बढ़ती ही जाती है। आदित्य शर्मा की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। वह शंख बजा बजाकर बारबार कहता है—'जय परमभट्टारक परममाहेश्वर परमेश्वर चन्द्रापीड़ देव की जय।' युवक समुदाय इस जयघोष को दुहराता है।]

लघु-यवनिका

तेरहवाँ दृश्य

स्थान—पहला और चौथे दृश्यवाला

समय—सन्ध्या

[रैदास के झोपड़े के बाहर कुछ दूर पर चन्द्रापीड़ के चारों शरीर-रक्षक बैठे हुए हैं। झोपड़े के निकट ही रैदास निम्न मुख किये बैठा है। वह चिन्ता में निमग्न है। यशोदा झोपड़े से बाहर उसके निकट आती है।]

यशोदा—फिर...फिर यहीं आकर बैठ गये, नाथ। बार बार मैं भीतर ले जाती हूँ, चित्त इधर उधर करने का प्रयत्न करती हूँ, पर ज्योंही मैं किसी काम में लगी कि आप फिर यहीं के यहीं। भोजन किया नहीं, नित्य के किसी कार्य में हाथ लगाते नहीं, अरे! उस बिहारी और राधा तक से अच्छी प्रकार नहीं बोलते। मैंने न जाने कितनी बार

आपको दुखी देखा है, क्रोधित भी, परन्तु ऐसी...ऐसी दशा तो कभी ...कभी भी नहीं देखी।

रैदास—(लंबी साँस लेकर) देखती कैसे, प्रिये? मेरा ऐसा सार्वजनिक अपमान, जीवन में, कभी हुआ ही न था। मैं अस्पृश्य हूँ, समाज से अलग रहता हूँ। सवर्ण आर्य मुझे छूने में भी पाप समझते हैं, यह मैं जानता था, परन्तु किसी के घर नहीं जाता था। किसी का कोई प्रयोजन होता तो वही यहाँ आता था। मैं जानता था कि वह मुझसे इस प्रकार खड़े होकर बात कर रहा है, जिससे मेरी छाया भी उस पर न पड़े। मैं जानता था, वह मनुष्य मुझे पशु से भी निकृष्ट समझता है, किन्तु वह मेरे घर जो आता था; अतः यह व्यवहार यह सामाजिक वहिष्कार, यह अत्याचार असह्य होने पर भी किसी प्रकार मैं सह लेता था; किन्तु...किन्तु (फिर लंबी साँस लेकर) आज तो इस सवर्ण-समाज के प्रतिनिधि राजा ने राजप्रासाद में...नहीं नहीं, राजप्रासाद में कहाँ...वहाँ...वहाँ मैं कहाँ घुस सकता था,...राजप्रासाद को वुलाकर, सारे सवर्ण समाज को एकत्रित कर, सहस्रों की संख्या में एकत्रित कर, मेरा अपमान...सार्वजनिक अपमान किया है! आह! वात वात पर उस जन-समुदाय का अट्टहास, मेरे मुँह से मेरे सुख-दुख के इतिहास वाक्य के निकलते ही उस इतिहास शब्द का परिहास, वह श्वान, उसका सिंहद्वार में राजप्रासाद के भीतर प्रस्थान...विना किसी रोक-टोक के प्रस्थान; एक-एक वात याद आ रही है। मैं जव सिंहद्वार में घुस रहा था उस समय मुझे द्वाराधिप ने किस प्रकार रोका था, उस परशुराम ने कैसे शब्द-वाण वरसाए थे, किन्तु उस कुत्ते को, निकृष्ट से निकृष्ट कुत्ते को किसी ने न रोका...प्रिये, वह सारा दृश्य, उस दृश्य की एक-एक घटना, नेत्रों के सामने घूम रही है। उस अट्टहास, उस अट्टहास के साथ व्यंग से कहे हुए उस शब्द इतिहास की प्रतिध्वनि मेरे कानों में हो रही है। इसके...इसके पूर्व मुझे तुम ऐसी...ऐसी मुद्रा में देख ही कैसे सकती

थीं ? ऐसी...ऐसी घटना ही इसके पहले कभी न हुई थी।

यशोदा—यह सब तो मैं जब से आप लौटे हैं, तब से कई बार सुन चुकी, किन्तु...

रैदास—और जब तक मैं जीवित रहूँ तब तक अब इसके अतिरिक्त और मुझसे कुछ भी सुनने की आशा न रखना। **(दाँत पीसकर)** आह ! आह ! यह सवर्ण-आर्यों का समाज और इनका प्रतिनिधि वह राजा।

यशोदा—किन्तु, नाथ, राजा...राजा ने तो आप कहते थे कि आपका उस समय का उद्दण्ड भाषण सुनने के पश्चात् भी आपके साहस ...आपकी स्पष्टवादिता पर आपको उल्टी बधाई दी। आपकी रक्षा के लिए स्वयं अपने शरीर-रक्षकों को आपके संग भेजा है।

रैदास—हाँ, सो तो उसने किया, किन्तु...किन्तु न जाने इस सब में भी उसका क्या आन्तरिक उद्देश्य है। संभव है, मेरे उस भाषण पर वह मुझे और कठिन दंड देना चाहता हो, संभव है, जन-समुदाय से रक्षा करने के निमित्त जो ये शरीर-रक्षक मेरे संग आये हैं, वे शरीर-रक्षक न होकर यथार्थ में प्रहरी हों। (कुछ रुककर) अरे ! उस राजा ने ही तो बुलाकर मेरा सार्वजनिक अपमान किया और कराया है। वह भी तो सवर्ण ही है न, सवर्णों का प्रतिनिधि...

यशोदा—नाथ, आपने जो वृत्त मुझे बताया उससे मैं तो ऐसा नहीं समझती कि राजा हम पर कोई अत्याचार करेगा। इस राजा का न्याय और उदारता...

रैदास—(बीच ही में) अरे ! छोड़ो...छोड़ो ये बातें, इन सवर्णों में हमारे साथ कौन क्या करेगा, यह हम नहीं कह सकते। राजा का न्याय, उसकी उदारता सवर्णों के लिए है, हम निकृष्ट से निकृष्ट, पशुओं से भी निकृष्ट जीवों के लिए नहीं; (कुछ रुककर) और...और यदि उसने स्वयं हम पर कोई अत्याचार न भी किया तो यह सवर्ण-समाज उससे करायेगा। मैंने इस समाज की भावनाओं को जितना आज समझा

है, उतना इसके पूर्व कभी न समझा था। यह समाज राजा को बाध्य करेगा कि वह हमें दंड...मेरे उस भाषण पर...उस उद्दण्ड भाषण पर घोर से घोर दण्ड दे; मेरी त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर के लिए अपना झोपड़ा न देने की धृष्टता पर मुझे और तुम सबको सूली पर चढ़ा दे, आजन्म कारागार में डाल दे। एक राजा कभी अगणित प्रजा की इच्छा के विरुद्ध चल सकता है ?

यशोदा—किन्तु हम...हम भी तो राजा की ही प्रजा हैं ?

रैदास—**(व्यंग से हँसकर)** हम भी प्रजा हैं ? हम प्रजा हैं कुचलने ...क्रूर से क्रूर पद्धति से कुचलने के लिए।

यशोदा—तो, नाथ, हम तो बरी से बुरी परिस्थिति के लिए प्रस्तुत ही हैं।

रैदास—हाँ, सो तो है ही, सो तो है ही। **(कुछ ठहरकर)** किन्तु मुझे सबसे अधिक दुख इस बात का है कि मैं वहाँ गया। मरने के पहले यह अपमान, घोर अपमान, सार्वजनिक अपमान और सहना बदा था। तुम जानती हो, प्रिये, मैं कितने उत्साह, कितनी उमंग से वहाँ गया था। मैं क्या जानता था कि मेरे मिलने का इस प्रकार का आयोजन किया गया है, नहीं तो चाहे प्राण चले जाते, पर मैं वहाँ जाना तो दूर रहा, उस मार्ग पर पैर न रखता।

यशोदा—भूल जाइए, नाथ, भूल जाइए, यह सब किसी प्रकार भूल जाइए।

रैदास—भूल जाऊँ, यह भूलने...भूलने की वस्तु है ?

[रैदास एक लंबी साँस लेता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

यशोदा—**(बड़े प्रेम से)** अच्छा, अब मेरी एक प्रार्थना मानोगे ?

रैदास—प्रार्थना, प्रिये ? जब तक जीवित हूँ तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करना मेरा कर्तव्य है।

यशोदा—तो देखो, सूर्य अस्त हो रहा है। दिन भर से एक दाना

भी पेट में नहीं गया है। चलो, भगवान् केशव की सन्ध्या-आरती कर, कुछ खा लो।

रैदास—भगवान...भगवान् की आरती ? यशोदा, अब तो भगवान् की आरती की भी इच्छा नहीं होती। अरे! भगवान् ने ही तो उन सवर्णों और हम, दोनों को, बनाया है...एकसा। उनके भी एक सिर दो आँखें, एक नाक, एक मुँह, दो कान, दो हाथ, दो पैर हैं, हमारे भी सब अंग वैसे के वैसे। उनमें यदि बुद्धि है, पराक्रम है, तो हममें भी है, और यदि कम है, तो उन सवर्णों के कारण। भगवान् अपनी ही संतति पर... अपनी ही संतति का ऐसा अत्याचार कैसे...कैसे देख सकता है ?

यशोदा—नाथ, भगवान् को न कोसो। यदि भगवान् पर भी हमारा विश्वास न रहा तो यह जीवन जीने योग्य न रह जायगा। उसकी कृति का भेद हम मानव नहीं जान सकते। उसका पार पाना हमारे लिए संभव नहीं।

रैदास—(एक दीर्घ निश्वास छोड़) अच्छी बात है।

[रैदास फिर एक दीर्घ साँस लेकर उठता है। दोनों झोपड़े में जाते हैं। कुछ ही देर में झोपड़े से घंटे का शब्द आने लगता है। घंटे का शब्द सुन चारों शरीर-रक्षक झोपड़े के निकट आते हैं।]

एक—यह क्या हो रहा है ?

दूसरा—(व्यंग से) आरती !

तीसरा—अस्पृश्य और उसके घर में भगवान् की आरती ?

चौथा—क्या पूछते हो।

[उसी समय नेपथ्य में शंख और जयजयकार की ध्वनि सुन पड़ती है।]

एक—अरे यह क्या है ?

दूसरा—परमभट्टारक आ रहे हैं।

तीसरा—यह कैसे हो सकता है ?

चौथा—अब जो न हो जाय सो थोड़ा है।

पहला—हाँ, बन्धु, ठीक कहते हो, महाराज की जगह इस अस्पृश्य का शरीर-रक्षक बन कर आना पड़ा। इसकी रक्षा में खड़े हैं। सच है, जो न हो जाय सो ही थोड़ा है।

[धीरे धीरे वह ध्वनि निकट आती है। कुछ ही देर में युवकों के एक बड़े भारी समुदाय के साथ चन्द्रापीड़ का प्रवेश। सबसे आगे आदित्य शर्मा हैं, जो शंख बजा रहा है। उसके पीछे चन्द्रापीड़ और उसके पीछे सारा समुदाय।]

आदित्य शर्मा—(शंख बजाकर) परमभट्टारक, परममाहेश्वर परमेश्वर चन्द्रापीड़ देव की जय।

[समुदाय इस जयजयकार को दुहराता है। शरीर-रक्षक खड्ग निकाल, उसे सिर पर लगा, अभिवादन करते हैं। झोपड़े का घंटा बंद हो जाता है और रैदास एकाएक सकुटुम्ब बाहर निकलता है। वह चन्द्रापीड़ को देख, दौड़कर, उसे साष्टाँग दण्डवत करता है। यशोदा, बिहारी और राधा भी निकट आ, हाथ जोड़, सिर झुका अभिवादन करते हैं।]

रैदास—(खड़े हो, हाथ जोड़) यहाँ...यहाँ...आप...आप परमभट्टारक! और पैदल!

चन्द्रापीड़—हाँ, रैदास, आज मेरे द्वारा तुम्हारा अपमान हुआ है, कदाचित् बिना सोचे, बिना समझे, कदाचित् पुरानी रूढ़ियों का मुझ पर भी अनजाने प्रभाव रहने के कारण। उसी...उसी अपमान का परिमार्जन उसी पाप का प्रायश्चित्त करने मैं तुम्हारे घर पर आया हूँ।

रैदास—(पुनः दंडवत कर, खड़े होकर, गद्गद् स्वर से) ऐसे...ऐसे हमारे राजा हैं? ऐसे...ऐसे महान्! ऐसे...ऐसे उदार-चेता! (उसकी आँखों से झरझर आँसू बहने लगते हैं।)

चन्द्रापीड़—और, रैदास, मैं ही नहीं, श्रीनगर के सवर्ण-आर्यों के पुत्र, पौत्रादि भी अपने पिता, पितामह आदि के पापों का प्रायश्चित्त करने आये

हैं। सारी भावी सवर्ण-प्रजा तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है; और उपस्थित है उस प्रजा का सच्चा नेता (आदित्य शर्मा की ओर संकेत कर) यह ब्राह्मण युवक आदित्य शर्मा।

रैदास—(पहले युवकों के समुदाय की ओर सिर झुका और फिर पृथ्वी पर सिर रख, आदित्य शर्मा का अभिवादन कर, खड़े हो, हाथ जोड़कर चन्द्रापीड़ से उसी प्रकार के गद्‌गद् स्वर से) मैं क्या...क्या कहूँ परम-भट्टारक, मेरे...मेरे कंठ से...इस...इस समय शब्द ही नहीं... नहीं फूटते।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

रैदास—(कुछ देर पश्चात्, एकाएक जल्दी जल्दी) देखिए, श्रीमान्, राजा को भेंट देने की हमारे यहाँ प्राचीन रीति है। मुझ अकिंचन के पास इस झोपड़े के अतिरिक्त और क्या है, परमभट्टारक, मैं यह झोपड़ा आपके श्रीचरणों में भेंट करता हूँ और चाहता हूँ कि अब त्रिभुवन स्वामिन् का मन्दिर यहीं बने, महाराज।

चन्द्रापीड़—(गद्‌गद स्वर से) रैदास! रैदास! तुम कितने... कितने उदार हो! अधिक भूमि, उत्तम गृह, रजत, सुवर्ण, मणि, रत्न कोई भी वस्तु तुमसे तुम्हारा यह प्रिय झोपड़ा न छुड़वा सके और...और... (चुप हो जाता है।)

रैदास—(बीच ही में) महाराज...महाराज, वे...वे सब निर्जीव ...निर्जीव पदार्थ थे, यह झोपड़ा निर्जीव होने पर भी मेरे लिए सजीव ...अत्यंत सजीव है। उनको ले, इसे कैसे देता? परन्तु...परन्तु इस...इस आपकी सजीव...सजीव असीम कृपा के उपलक्ष में तो सजीव झोपड़े की भेंट...भेंट होना स्वाभाविक...एक अत्यन्त स्वाभाविक बात है।

आदित्य शर्मा—(शंख बजाकर) जय अस्पृश्य-उद्धारक, जय उदार-

चेता, जय परमभट्टारक, जय परममाहेश्वर, जय परमेश्वर चन्द्रापीड़ देव की जय।

[युवक दुहराते हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

चन्द्रापीड़—कहो, जय आत्माभिमानी, उदार-हृदय रैदास चर्मकार की जय।

[युवक दुहराते हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

चन्द्रापीड़—(**यशोदा से**) क्यों, देवि, तुम्हारे गृह में अभी घन्टा बज रहा था, किसी देवता का पूजन हो रहा था ?

यशोदा—(**सिर झुकाए हुए, लज्जा से**) हम भगवान् की सन्ध्या-आरती कर रहे थे, परमभट्टारक।

चन्द्रापीड़—तो तुम्हारे यहाँ भगवान् की मूर्ति है, देवि, क्या नाम है, मूर्ति का ?

विहारी
राधा } (**एक साथ**) केशव भगवान्। केशव भगवान्।

चन्द्रापीड़—(**मुस्कराकर**) केशव भगवान् ? सुन्दर. . .बड़ा सुन्दर नाम है। (**कुछ रुककर रैदास से**) देखो, रैदास, त्रिभुवन स्वामिन् के मन्दिर में जिस मूर्ति की स्थापना होगी, उसका नाम भी केशव भगवान् होगा; और ऐसी व्यवस्था की जायगी जिसमें तुम लोगों को भी उनके दर्शन हों।

[इस बार यशोदा रो पड़ती है।]

आदित्य शर्मा—(**शंख बजाकर**) परमभट्टारक परममाहेश्वर परमेश्वर चन्द्रापीड़ देव की जय।

[युवक बड़े ही उत्साह से जयजयकार को अनेक बार दुहराते हैं।]

यवनिका

उपसंहार

स्थान—पहले, चौथे और तेरहवें दृश्यवाला

समय—उष:काल

[अब समतल-भूमि पर त्रिभुवन स्वामिन् का अत्यंत विशाल मन्दिर बन गया है। इसका मुख्य शिखर तथा अन्य शिखरावली तथा दूसरी सभी वस्तुएँ उँचाई एवं अन्य सभी बातों में पीछे की ओर की उच्च पर्वतावली से स्पर्द्धा कर रही हैं। पर्वत-माला के हिम-मण्डित-शिखर यदि उषा के प्रकाश में चमक रहे हैं तो मंदिर की शिखरावली के सुवर्ण कलश भी देदीप्यमान हैं। पर्वत-माला के नीचे का प्रदेश यदि विविध रंग के पुष्पों वाली वृक्षावली से चित्र-विचित्र दिखता है, तो मंदिर की प्राचीर पर भी भिन्न भिन्न रंगों की चित्रकारी है। मन्दिर के उष:काल की आरती का घंटा बज रहा है। नेपथ्य में दूर पर गान का शब्द सुनायी पड़ता है। धीरे-धीरे गान समीप आता है और गान गाते हुए आगे-आगे यशोदा और उसके पीछे-पीछे रैदास तथा उसके पुत्र, पुत्री आते हैं। ये लोग धीरे धीरे मन्दिर की ओर बढ़ रहे हैं।]

गान

प्रभु जी ! तुम चंदन, हम पानी।
जाकी अँग अँग बास समानी॥
प्रभु जी ! तुम घन, वन हम मोरा।
जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी ! तुम दीपक हम बाती।
जाकी जोति बरै दिन राती॥

प्रभु जी ! तुम मोती हम धागा ।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभु जी ! तुम स्वामी हम दासा ।
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥[1]

यवनिका

समाप्त

---

[1] सन्त रैदास कृत

शिवाजी का सच्चा स्वरूप

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र

शिवाजी—प्रसिद्ध मराठा वीर

मोरोपंत पिंगले—पेशवा

आवाजी सोनदेव—शिवाजी का एक सेनापति

स्थान—राजगढ़

समय—सन् १६४८ ई०

स्थान—राजगढ़ दुर्ग की एक दालान

समय—सन्ध्या

[दाहिनी ओर दालान का कुछ हिस्सा दिखायी देता है। दालान की छत पत्थर के खंभों पर है। उसके पीछे की दीवाल भी पत्थर की ही है। दालान के पीछे की ओर दाहिनी तरफ़, दूर पर, गढ़ की सफ़ील और कुछ बुर्जे दिख पड़ती हैं। बाईं तरफ़ सैह्याद्रि-पर्वत-माला की शिखरावली दृष्टि-गोचर होती है। कुछ शिखरों की ओट में सूर्य अस्त हो रहा है, जिसके प्रकाश से सारा दृश्य आलोकित है। दालान के सामने किले का खुला मैदान है। मैदान में एक ऊँचे स्तंभ पर भगवा रंग का मराठा झंडा फहरा रहा है। दालान में जाजम बिछी है, उस पर कीनख्वाव की गद्दी पर मसनद के सहारे शिवाजी वीरासन से किसी विचार में मग्न हैं। उनके स्वरूप और वेष-भूषा के संबन्ध में कुछ भी लिखना इसलिए निरर्थक है कि एक भी भारतीय ऐसा नहीं जो उससे परिचित न हो। दालान के बाहर शस्त्रों से सुसज्जित दो मावली शरीर-रक्षक खड़े हुए हैं। बाईं ओर से मोरोपंत पिंगले का प्रवेश। मोरोपंत अधेड़ अवस्था का, गेहुँएँ वर्ण का, ऊँचा-पूरा व्यक्ति है। वेष-भूषा शिवाजी से मिलती जुलती है; केवल सिर की पगड़ी में अन्तर है। मोरोपंत की पगड़ी शिवाजी की पगड़ी के सदृश मुगल ढंग की न होकर मराठी तरज की है। उसके मस्तक पर त्रिपुण्ड भी है।]

मोरोपंत—(अभिवादन कर) श्रीमन्त सरकार, सेनापति आवाजी सोनदेव कल्याण प्रान्त को जीत, वहाँ का सारा खजाना लूट कर आ गये हैं।

शिवाजी—(चौंक कर) अच्छा ! (मोरोपंत की ओर देख कर) बैठो, पेशवा, बड़ा शुभ संवाद लाये। आवाजी सोनदेव हैं कहाँ ?

मोरोपंत—(वीरासन से बैठकर) श्रीमन्त की सेवा में अभी उपस्थित हो रहे हैं।

[कुछ देर निस्तब्धता। शिवाजी और मोरोपंत दोनों उत्सुकता से बाईं ओर देखते हैं। कुछ ही देर में आवाजी सोनदेव बाईं ओर से आता हुआ दिखायी देता है। उसके पीछे हम्मालों का एक बड़ा भारी झुंड है। हर हम्माल के सिर पर एक एक हारा (बड़ा भारी टोकना) है। हम्मालों के झुंड के पीछे एक पालकी है। पालकी बंद है। आवाजी सोनदेव भी अधेड़ अवस्था का ऊँचा-पूरा मनुष्य है। वेष-भूषा मोरोपंत के सदृश है। आवाजी सोनदेव दालान में आकर शिवाजी का अभिवादन करता है। हम्मालों का झुंड और पालकी दालान के बाहर रहते हैं।]

शिवाजी—बैठो, आवाजी, कल्याण-विजय पर तुम्हें बधाई है।

आवाजी सोनदेव—(बैठते हुए) बधाई है श्रीमन्त सरकार को।

शिवाजी—कहो पैदल में मावलियों ने अधिक वीरता दिखायी या हेटकरियों ने ?

आवाजी सोनदेव—दोनों ने ही, श्रीमन्त सरकार।

शिवाजी—और घोड़सवारों में बारगिरों ने या शिलेदारों ने ?

आवाजी सोनदेव—इनमें भी दोनों ने ही, श्रीमन्त।

शिवाजी—सेना के अधिपति कैसे रहे ?

आवाजी सोनदेव—पैदल के अधिपति—नायक, हवालदार, जुमालदार और एक-हज़ारी, तथा घोड़सवारों के अधिपति—हवालदार, जुमालदार और सुभेदार, सभी का काम प्रशंसनीय रहा, श्रीमन्त सरकार।

शिवाजी—(हम्मालों की ओर देखकर, मुस्कराते हुए) कल्याण का खजाना भी लूट लाये; बहुत माल मिला ?

आवाजी सोनदेव—हाँ, श्रीमन्त, सारा खजाना लूट लिया गया और इतना माल मिला जितना अबतक की किसी लूट में भी न मिला था। चाँदी, सोना, जवाहरात, न जाने क्या क्या मिला। मैं तो समझता हूँ, श्रीमन्त, केवल दक्षिण ही नहीं उत्तर की भी विजय स संपदा से हो सकेगी।

शिवाजी—(हम्मालों के पीछे पालकी को देखकर) और उस मेणा में क्या है?

आवाजी सोनदेव—(मुस्कराते हुए) उस मेणा...उस मेणा में, श्रीमन्त, इस विजय का सबसे बड़ा तोफ़ा है।

शिवाजी—(उत्सुकता से आवाजी सोनदेव की ओर देखते हुए) अर्थात्?

आवाजी सोनदेव—श्रीमन्त, कल्याण के सुभेदार अहमद की पुत्र-वधू के सौन्दर्य का वृत्त कौन नहीं जानता? उसे भी श्रीमन्त की सेवा के लिए बन्दी करके लाया हूँ।

[शिवाजी की सारी प्रसन्नता एकाएक विलुप्त हो जाती है। उनकी भृकुटी चढ़ जाती है और नीचे का ओठ ऊपर के दाँतों के नीचे आ जाता है। आवाजी सोनदेव शिवाजी की परिवर्तित मुद्रा देखकर घबड़ा सा जाता है। मोरोपंत एकटक शिवाजी की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

शिवाजी—(भर्राये हुए स्वर में) मेणा को तत्काल इस पड़वी में लाओ।

[आवाजी सोनदेव जल्दी से दालान के बाहर जाता है। शिवाजी एकटक पालकी की ओर देखते हैं; मोरोपंत शिवाजी की तरफ। कुछ ही क्षणों में पालकी दालान में आती है। ज्योंही पालकी दालान में रखी जाती है त्योंही शिवाजी जल्दी से पालकी के निकट पहुँचते हैं। मोरोपंत शिवाजी के पीछे पीछे जाता है।]

शिवाजी—(आवाजी सोनदेव से) खोल दो मेणा, आवाजी।

[आवाजी सोनदेव पालकी के दरवाजे खोलता है। दरवाजे खुलते

ही अहमद की पुत्र-वधू उसमें से निकल चुपचाप एक ओर सिकुड़ कर खड़ी हो जाती है। वह परम सुन्दरी युवती है। वेष-भूषा मुगल स्त्रियों के सदृश है।]

शिवाजी—(अहमद की पुत्रवधू से) माँ, शिवा अपने सिपहसालार की इस नामाक़ूल हरकत पर आपसे मुआफ़ी चाहता है। आह! कैसी अजीबो-ग़रीब ख़ूबसूरती है, आपकी। आपको देखकर मेरे दिल में एक... सिर्फ़ एक बात उठ रही है—कहीं मेरी माँ में आपकी सी ख़ूबसूरती होती तो मैं भी बदसूरत न होकर एक ख़ूबसूरत शख़्श होता। माँ, आपकी ख़ूबसूरती को मैं एक... सिर्फ़ एक काम में ला सकता हूँ—उसका हिन्दू-विधि से पूजन करूँ; उसकी इस्लामी-तरीक़े से इबादत करूँ। आप ज़रा भी परेशान न हों। माँ, आपको आराम, इज़्ज़त, हिफ़ाज़त, और ख़बरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायगा; बिना देरी के, फ़ौरन। (आबाजी सोनदेव की ओर घूम कर) आबाजी, तुमने ऐसा काम किया है, जो कदाचित् क्षमा नहीं किया जा सकता। शिवा को जानते हुए, निकट से जानते हुए, तुम्हारा साहस ऐसा घृणित कार्य करने के लिए कैसे हुआ? शिवा ने आज पर्य्यन्त किसी मसजिद की दीवाल में बाल बराबर दरार भी न आने दी। शिवा को यदि कहीं कुरान की पुस्तक मिली तो उसने उसे सिर पर चढ़ा उसके एक पन्ने को भी किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए बिना मौलवी साहब की सेवा में भेज दिया। हिन्दू होते हुए भी शिवा के लिए इस्लाम-धर्म पूज्य है। इस्लाम के पवित्र स्थान, उसके पवित्र ग्रन्थ, सम्मान की वस्तुएँ हैं। शिवा हिन्दू और मुसलमान प्रजा में कोई भेद नहीं समझता। अरे! उसकी सेना में मुसलिम सैनिक तक हैं। वह देश में हिन्दू-राज्य नहीं, सच्चे स्वराज्य की स्थापना चाहता है। आततायियों से सत्ता का अपहरण कर उदार-चेताओं के हाथों में अधिकार देना चाहता है। फिर पर-स्त्री—अरे! पर-स्त्री तो हरेक के लिए माता के समान है। जो अधिकार प्राप्त जन हैं,

जो सरदार हैं, या राजा, उन्हें...उन्हें तो स संबंध में विवेक, सबसे अधिक विवेक रखना आवश्यक है। (कुछ रुककर) आवाजी, क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते थे ? इसलिए तो तुमने यह कृति नहीं की ?

रहा है ? क्या स्वयं चैन उड़ाना उसका उद्देश्य है ? तब...तब तो ये रक्त-पात, ये लूट-मार, घृणित, अत्यंत घृणित कृतियाँ हैं। शिवा में यदि शील नहीं, तो उसके सेनापतियों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता। फिर तो हम में और इन्द्रिय-लोलुप-लुटेरों तथा डाकुओं में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। अरे ! तब तो हमारे जीवन से हमारी मृत्यु, हमारी विजय से हमारी पराजय, कहीं श्रेयकर है। **(मोरोपंत से)** आह ! पेशवा, यह...यह मेरे...मेरे एक सेनापति ने...मेरे एक सेनापति ने क्या...क्या कर डाला ? लज्जा से मेरा सिर आज पृथ्वी में नहीं, पाताल में घुसा जाता है। इस पाप का न जाने मुझे कैसा...कैसा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ? (कुछ रुककर) पेशवा, इस समय तो मैं केवल एक घोषणा करता हूँ—भविष्य में अगर कोई ऐसा कार्य करेगा तो उसका सिर उसी समय धड़ से जुदा कर दिया जायगा।

[शिवाजी का सिर नीचे झुक जाता है। अहमद की पुत्र-वधू कनखियों से शिवाजी की ओर देखती है। उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं। मोरोपंत शिवाजी की तरफ देखता है और आवाजी सोनदेव घबड़ाहट भरी दृष्टि से मोरोपंत की ओर।]

यवनिका

समाप्त

निर्दोष की रक्षा

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र—

मोहम्मदशाह—हिन्दुस्थान का बादशाह
कमरुद्दीनख़ाँ—मोहम्मदशाह का वज़ीर
शुभकरण—एक जौहरी तथा मनसबदार
शेरअफ़ग़नख़ाँ—शुभकरण का आफ़ीसर
रोशनुद्दौला—सल्तनत का एक अमीर
हाजी हाफ़िज़—एक पंजाबी जूते वाला
रूमीख़ाँ—पंजाबियों का मददगार, तुर्कों का नेता

स्थान—दिल्ली

समय—सन् १७२६ ई०

पहला दृश्य

स्थान—दिल्ली में सादुल्लाखाँ का चौक

समय—प्रदोष

[अँधेरा हो चला है, चौक के मकानातों के बाहिरी हिस्से दृष्टि-गोचर होते हैं। उनके सामने सड़क है। शाबान महीने के प्रथम पक्ष के कारण बाज़ार में रोशनी है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सड़क पर इधर-उधर आतिशबाज़ी चला रहे हैं, इनमें लड़के अधिक संख्या में हैं। एक तरफ़ से शुभकरण पालकी पर आता है। शुभकरण लगभग ३० वर्ष का, गौर वर्ण का, साधारणतया सुन्दर मनुष्य है। वस्त्र उस काल के दरबारी ढंग के हैं। गोल पगड़ी है, जिसपर चमकीला जड़ाऊ सिरपेच। घेरदार रेशमी जामा है, जो यत्र-तत्र सुनहरी सितारों इत्यादि से भरा हुआ है। रेशमी ही पाजामा है। जामे के ऊपर जरी का भड़कीला दुपट्टा है। गला, वक्षस्थल, भुजाएँ सभी अंग जगमगाते हुए जड़ाऊ ज़ेवरों से सुशोभित हैं। आकृति और वस्त्र-भूषा से शुभकरण सल्तनत का अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति जान पड़ता है। उसकी पालकी उठानेवालों की भी बेशकीमती पोशाकें हैं। पालकी के इधर-उधर शुभकरण के अनेक शरीर-रक्षक चल रहे हैं। उनकी वेष-भूषा उस काल के सैनिकों के सदृश है। वे हथियारों से भी सुसज्जित हैं। पालकी उठानेवाले और सैनिक सब हिन्दू हैं। एकाएक आतिशबाज़ी की एक जलती हुई छछुंदर शुभकरण की पालकी में गिरती है। घबड़ाहट मच जाती है; कोलाहल होता है। पालकी एक दम सड़क पर रख दी जाती है। शरीर-रक्षक हाथों से ही

आग बुझाते हैं। शुभकरण का शरीर तो नहीं जलता, वस्त्र यत्र-तत्र जल जाते हैं। एक भीड़ इकट्ठी हो जाती है। शुभकरण के शरीर-रक्षक जब कुछ मुसलमान लड़कों को गालियाँ देते, और पीटते हैं, तब पंजाबी जूतेवाले अपने जूते ले लेकर निकल आते हैं और इन शरीर-रक्षकों को जूते लगाते हैं। इस पर झगड़ा बढ़ता है। शरीर-रक्षक तलवारें निकालते हैं। बहुत से पंजाबी तो भाग जाते हैं, पर एक पंजाबी एक शरीर-रक्षक की तलवार उससे छुड़ाकर शरीर-रक्षकों पर तलवार से हमला करता है। हल्ले के कारण शुभकरण हाथ के इशारे से झगड़ा रोकने का प्रयत्न करता है। धीरे-धीरे शुभकरण की पालकी चली जाती है। शरीर-रक्षक तथा पंजाबी भी जाते हैं। भीड़ भी घटने लगती है। न कोई अधिक घायल होता है और न कोई मरता है।]

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—वही

समय—पहले दृश्य के पश्चात् तत्काल

[शुभकरण के उस शरीर-रक्षक का प्रवेश, जिसकी तलवार पंजाबी जूतेवाले ने छुड़ा ली थी। वह दूसरी तलवार लिये हुए है। उसके कई मित्र भी उसके साथ हैं। सब हिन्दू हैं। इनमें कुछ तलवारें और छुरे आदि लिये हैं और कुछ निःशस्त्र भी हैं।]

शरीर-रक्षक—(जोर से चिल्लाकर) अरे कहाँ है वह पंजाबी चमार! मेरी तलवार छुड़ायी थी; बड़ा बहादुर! सच्चे बाप का बेटा हो तो आ न! निकल न अब! (कुछ भीड़ इकट्ठी हो जाती है, पर वह पंजाबी

नहीं आता।) बस हो गयी बहादुरी ! उस वक़्त धोखे से तलवार ले ली अब निकले तो जानूँ ; चमार कहीं का ! (कुछ रुककर) लौंडों ने मालिक की, हज़ारों अशर्फ़ियों की, बेशकीमती, पोशाक जला दी, वह तो बच गये, नहीं तो न जाने क्या होता, और जब उन लौंडों को दो चार चपत लगायी गयीं तब ये चमार जूते लेकर निकले ! ये साले पंजाबी चमरे सभी बदमाश होते हैं और इनके लौंडे तो आफ़त के परकाले। (भीड़ के कुछ लड़कों को चपत लगाकर) भागो, सालो ! यहाँ कोई तमाशा है ?

[कुछ लड़के भाग जाते हैं, जो नहीं भागते, उन्हें वह शरीर-रक्षक और उसके साथी और ठोकते हैं।]

एक लड़का--(चिल्लाते हुए) ठोको ! मारो ! मार डालो ! काफ़िरो ! पीठ न दिखाऊँगा। तुम पंजाबियों को गाली देते हो ?

शरीर-रक्षक--(उस लड़के को और पीटते हुए) बड़ा बहादुर का बच्चा ! मलीदा निकाल दूँगा, मलीदा ! हड्डी पसली सब तोड़ दूँगा ! भेजा निकल आयगा, भेजा ! जान बचा, नहीं तो मरा !

[अब फिर कुछ पंजाबी जूते ले लेकर निकलते हैं। कुछ उस लड़के को बचाते हैं; कुछ शरीर-रक्षक और उनके साथियों पर टूटते हैं। शरीर-रक्षक पर टूटने वालों में हाजी हाफ़िज़ मुख्य है। यह ऊँचा पूरा, किन्तु वृद्ध व्यक्ति है। बड़ा कोलाहल और गाली-गलौच होता है। शरीर-रक्षक तलवार निकाल कर हाजी हाफ़िज़ पर वार करता है। वह मरकर गिरता है। यह देखकर शरीर-रक्षक और उसके साथी भाग जाते हैं। कुछ भीड़ भी भागती है। पंजाबी जूतेवाले हाजी हाफ़िज़ की लाश के चारों तरफ इकट्ठे हो जाते हैं ; उसे देखते हैं, और जब उन्हें विश्वास हो जाता है कि वह मर गया है, तब उनमें से कुछ ऊँचे स्वर से रोते और 'हाय ! हाय !' करते हैं। हाजी हाफ़िज़ के घर से कुछ औरतें निकलतीं और उसकी लाश के पास आती हैं। उसे मरा देख रोतीं और हाय ! हाय, करके चिल्लातीं तथा छाती पीटती हैं।]

एक पंजाबी युवक—(आगे बढ़कर-कड़क कर) अरे तुम सब यह क्या करते हो ? यह रोने-चिल्लाने-छाती-पीटने और आँसू-बहाने का मौका है ? यह मौका है इन काफ़िरों के इन्तकाम लेने का !

दूसरा पंजाबी युवक—(आगे बढ़कर) हाँ, हाँ, बरादर बिलकुल ठीक फ़रमा रहे हैं। एक हाजी हाफ़िज़ की जान पर सैकड़ों और हज़ारों काफ़िरों की जानें कुरबान की जायँगी।

तीसरा पंजाबी युवक—और उस शुभकरण की तो ज़रूर ही। देखो हाजी हाफ़िज़ अब तो दफ़नाये ही तब जायँगे जब इस शुभकरण और उसके सिपाहियों की लाशें जल चुकेंगी।

चौथा पंजाबी युवक—यह ठीक है। यह ठीक है। तो चलो, ले चलो, हाजी हाफ़िज़ को उसी काफ़िर शुभकरण के मकान के दरवाज़े पर।

कई आवाज़ें—लाओ, लाओ। पलंग लाओ। यह ठीक है। यह ठीक है। इन्तकाम ! बस इन्तकाम !

[कुछ लोग दौड़कर हाजी हाफ़िज़ के मकान से पलंग लाते हैं। हाजी हाफ़िज़ की लाश उस पर रखी जाती है।]

पहला पंजाबी युवक—बोलो, 'दीन ! दीन !'

[ज़ोर से 'दीन ! दीन !' के नारों के साथ पलंग उठाया जाता है। और 'दीन ! दीन !' के ऊँचे नारे लगाती हुई वह भीड़ हाजी हाफ़िज़ की लाश को ले जाती है। अब सरकारी सिपाही पहुँचते हैं।]

लघु-यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—शुभकरण के मकान का बाहरी भाग

समय—दूसरे दृश्य के पश्चात् तत्काल

[सामने मकान का सदर दरवाजा और उसके बाहरी भाग का कुछ हिस्सा दिखायी देता है। मकान के दिखने वाले हिस्से से ही जान पड़ता है कि कितना बड़ा और शानदार मकान है। दरवाजे पर दो पहरेदार टहल रहे हैं। मकान के सामने सड़क है। शुभकरण कुछ आदमियों के साथ मकान के बाहर निकलता है। पहरेदार अदब से खड़े हो जाते हैं।]

शुभकरण—बख्तावरसिंह ने सचमुच बहुत बुरा काम किया। उसको फिर से सादुल्लाखाँ के चौक को जाने की क्या ज़रूरत थी ? (कुछ रुककर) और अभी भी पता नहीं है ?

एक आदमी—नहीं, सरकार, हाजी हाफ़िज़ के मरते ही वह सिर पर पैर रखकर भागा।

शुभकरण—और अब ये पंजाबी, जो पक्के मज़हबी समझे जाते हैं, बड़ा उपद्रव करेंगे। शहर के सभी मुसलमान इनका साथ देने को तैयार हो जायँगे।

दूसरा आदमी—उपद्रव करना उन्होंने शुरू ही कर दिया है, हुज़ूर, कहते थे, जब तक....सरकार.... (चुप हो जाता है।)

शुभकरण—क्या कहते थे ?

वह आदमी—मैं अपनी ज़बान से नहीं कह सकता।

शुभकरण—नहीं, नहीं, तुम्हें कहना ही होगा, नहीं तो मैं शेरअफ़गान-खाँ सलामत से क्या कहूँगा ?

तीसरा आदमी—कहते थे, सरकार, कि जब तक आपकी और बख्ता-वरसिंह की लाशें जल न जायँगी तब तक हाजी हाफ़िज़ दफ़न न किये जायँगे।

शुभकरण—(विचार पूर्वक) ऐसा ?

[दाहिनी ओर से दो आदमियों का दौड़ते हुए प्रवेश।]

पहला आगन्तुक—हुज़ूर, पंजाबी हाजी हाफ़िज़ की लाश को यहाँ ला रहे हैं।

शुभकरण—(आश्चर्य से) यहाँ ?

दूसरा आगन्तुक—जी हाँ, हमारे दरवाज़े पर रखने के लिए।

शुभकरण—तो लाश का जुलूस आ रहा है?

पहला आगन्तुक—जी, शहर में घूमता हुआ, और जुलूस की सरदारी रूमीखाँ कर रहा है।

शुभकरण—अच्छा, रूमीखाँ! और सिर्फ़ पंजाबी ही नहीं सभी मुसलमान 'दीन दीन' कहकर उस जुलूस में शामिल हो जाते होंगे?

दूसरा आगन्तुक—सरकार बड़ा जुलूस हो गया है, बड़ा भारी जुलूस; और सारे मामले को मज़हबी रंग दे दिया गया है।

शुभकरण—मैं जानता था कि बड़ा उपद्रव होगा; और जब रूमीखाँ ने सरदारी करना तय कर लिया है तब कहना ही क्या है। (कुछ रुककर) अच्छा, अब तो शेरअफ़ग़नखाँ सलामत के यहाँ फ़ौरन ही जाना चाहिए। (अपने साथ आने वालों में से एक आदमी से) घोड़े तैयार हैं न?

वह आदमी—जी, हुज़ूर, अस्तबल के फाटक पर ही हैं।

शुभकरण—(आगन्तुकों से, दाहिनी ओर इशारा कर) इस रास्ते जुलूस आ रहा है?

एक आगन्तुक—जी, हाँ, इस रास्ते।

शुभकरण—(बाईं ओर इशारा करके) अच्छा तो उस रास्ते चलना ठीक होगा। (कुछ रुककर) ग़नीमत है इस वक़्त औरतें और बच्चे घर में नहीं हैं। (बाईं ओर जाने लगता है, साथ में दो सिपाही रवाना होते हैं। जाते जाते कुछ रुककर, बाकी आदमियों से) हाँ, देखो, तुम लोग ज़रा भी गड़बड़ न करना। भीतर जाकर फाटक बन्द कर बैठ जाओ। सिर्फ़ पहरेदार बाहर रहें। साफ़ साफ़ कह देना, मैं घर में नहीं हूँ; हुज़ूर शेरअफ़ग़नखाँ साहब की ख़िदमत में गया हूँ। और वे लोग चाहे कुछ भी क्यों न करें, तुम लोग कुछ न करना।

कुछ व्यक्ति—(एक साथ) जो हुक्म।

[नेपथ्य में दूर पर 'दीन दीन' के नारे सुन पड़ते हैं। शुभकरण दो सिपाहियों के साथ जल्दी से बाईं ओर से जाता है। उसके आदमी मकान के भीतर जाकर दरवाजा बन्द कर लेते हैं। दो पहरेदार बाहर खड़े रहते हैं। धीरे धीरे नारे नजदीक सुनायी देने लगते हैं; और कुछ ही देर में हाजी हाफ़िज की लाश का जुलूस शुभकरण के फाटक के सामने पहुँच जाता है। बड़ी बुलन्द आवाजों में 'दीन दीन' बोला जाता है। हाजी हाफ़िज की लाश का पलंग दरवाजे के ठीक सामने रख दिया जाता है। रूमीख़ाँ भीड़ को चीरता हुआ पहले आगे बढ़ता है और फिर भीड़ की तरफ़ घूमकर खड़ा होता है। रूमीख़ाँ की अवस्था लगभग ३५ वर्ष की है। वह गोरे रंग का, ऊँचा पूरा, मोटा आदमी है; तुर्की वेष है।]

रूमीख़ाँ—(भीड़ को संबोधन कर) देखो, बरादरान! खबरदार; ज़रा भी गड़बड़ न की जाय। 'दीन दीन' के अलावा कोई दूसरा लफ़्ज़ भी ज़बान से न निकले। हमारे मज़हब के एक बहुत बड़े आदमी का, जो हज तक हो आये थे, काफ़िरों ने क़त्ल किया है। हमें अपना मज़हबी फ़र्ज़ अदा करना है; तमाशा नहीं बनाना।

जोर के नारे—दीन दीन! दीन दीन!

रूमीख़ाँ—(पहरेदार की ओर घूमकर, उस ओर कुछ आगे बढ़) जनाब शुभकरण साहब महल में तशरीफ़ रखते हैं?

एक पहरेदार—(आगे बढ़ कर, सलाम कर) जी नहीं।

रूमीख़ाँ—मैं जानता था कि आप यही जवाब फ़र्माएँगे।

[भीड़ में जोर की हँसी सुनायी देती है।]

रूमीख़ाँ—(भीड़ की तरफ़ मुड़कर) ख़बरदार! यह मौका निहायत अहम है; हँसने का नहीं, सिर्फ़ परवरदिगार को याद करने का।

जोर के नारे—दीन दीन! दीन दीन!

रूमीख़ाँ—(फिर पहरेदारों की तरफ़ मुड़कर) आप सच फ़रमा रहे हैं कि जनाब शुभकरण साहब महल में तशरीफ़ नहीं रखते?

वही पहरेदार—बिलकुल सच कह रहा हूँ, हुजूर। वे हुजूरवाला जनाब शेरअफ़गनखाँ सलामत की ख़िदमत में तशरीफ़ ले गये हैं।

[रूमीख़ाँ कुछ देर चुपचाप खड़े हो विचार में डूब जाता है। भीड़ एक टक उसकी ओर देखती है।]

रूमीख़ाँ—(विचार पूर्वक) अच्छी बात है, कोई मुजायका नहीं, (भीड़ की तरफ़ मुड़ जोर से) देखो, बरादरान! पहरेदार साहब फ़रमा रहे हैं कि जनाब शुभकरण साहब हुजूरवाला जनाब शेरअफ़गनखाँ सलामत के दौलतख़ाने को तशरीफ़ ले गये हैं।......

कुछ आवाजें—झूठ! झूठ!

जोर की आवाजें—बिलकुल झूठ, बिलकुल....

रूमीख़ाँ—(हाथ हिलाते हुए, जोर से) नहीं, नहीं, बग़ैर तहक़ीकात किये आप लोगों को ऐसी बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए। कोई हर्ज नहीं। जनाब शुभकरण साहब मनसबदार के ओहदे पर हैं। वे हरगिज़ नहीं भाग सकते। मैं अभी हुजूरवाला शेरअफ़गनखाँ सलामत के दौलत-ख़ाने पर जाता हूँ। आप लोग हाजी साहब की लाश के साथ यहीं तशरीफ़ रक्खें।

जोर की आवाजें—दीन दीन! दीन दीन!

रूमीख़ाँ—लेकिन देखिए, पूरा पूरा अमन चैन रहे; कोई गुस्ताखी न हो; कोई झगड़ा झंझट न हो; मेरे साथ कुछ आदमी चल सकते हैं; लेकिन ज्यादा नहीं।

[रूमीख़ाँ बाईं ओर को जाता है। भीड़ 'दीन दीन' के नारे लगाती हुई रास्ता छोड़ देती है। 'दीन दीन' के नारे जारी रहते हैं। कुछ देर बाद दूर पर भी 'दीन दीन' के नारे सुनायी देते हैं, जिससे जान पड़ता है कि रूमीख़ाँ का जुलूस शेरअफ़गनखाँ के मकान की ओर बढ़ रहा है।]

लघु-यवनिका

चौथा दृश्य

स्थान—शेरअफ़ग़नख़ाँ के महल का एक कमरा

समय—तीसरे दृश्य के पश्चात् तत्काल

[कमरे की दीवालों पर पक्का रंग और सुनहरी काम है। कई दर-वाज़े हैं, जिनकी चौखटें और किवाड़ों पर खुदाव का काम है और यत्र-तत्र चाँदी लगी हुई है। कमरे की छत पर शीशे का काम किया गया है। ज़मीन पर ईरानी क़ालीन है और उस पर मुग़ल ज़माने का चाँदी सोने का [illegible] मसनदों के सहारे शेरअफ़ग़नख़ाँ और रोशनुद्दौला बैठे हुए सोने के हुक्के को सुनहरी सटक से पी रहे हैं। गद्दी के नीचे क़ालीन पर शुभकरण बैठा हुआ है। शेरअफ़ग़नख़ाँ की उम्र करीब करीब ४५ साल की है। वह गेहुँए रंग का ऊँचा पूरा व्यक्ति है। सिर खुला है, जिस पर लंबे पट्टे और मुख पर बड़ी बड़ी मूछें तथा दाढ़ी है। बालों के देखने से जान पड़ता है कि उन पर ख़िजाब किया गया है। बदन पर रेशमी ज़री का कुरता और रेशमी पाजामा है। गले में मोतियों का कंठा है। रोशनुद्दौला की अवस्था लगभग ४० वर्ष की है। वह गोरे रंग का ऊँचा और खूब मोटा ताजा आदमी है। सिर पर उसके भी पट्टे हैं; पर दाढ़ी नहीं, सिर्फ़ मूछें हैं। उसकी सिर-पेच लगी हुई, मुग़ल फैशन की पगड़ी उसी के निकट गद्दी पर रखी हुई है। वह रेशमी अँगरखा और रेशमी पाजामा पहने हुए है। अँगरखे पर सच्चे सोने के सितारे टँके हुए हैं। उसका गला, वक्षस्थल और भुजाएँ दमकते हुए जड़ाऊ आभूषणों से सुसज्जित हैं।]

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(शुभकरण से) तुम्हारे आदमी ने ज़रूर ग़लती की, लेकिन कभी-कभी ऐसा हो ही जाता है, स पर इतना शोरोगुल वेजा बात है।

शुभकरण—हूज़ूर, उन लोगों ने तो सारे मामले को मज़हबी रंग दे दिया है।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—एक हिन्दू और एक मुसलमान लड़ पड़े; मुसलमान मारा गया; शायद हिन्दू ही मारा जाता। मज़हब से इसका क्या ताल्लुक; (रोशनुद्दौला से) कहो, भाई ?

रोशनुद्दौला—मुतलक नहीं, तुम जानते हो, भाई, मैं तो बड़ा मजहबी आदमी हूँ, लेकिन मुझे इस मामले में कहीं मज़हब की बू भी नहीं आती।

शुभकरण—हुज़ूरवाला, रूमीख़ाँ तो हाजी साहब की लाश एक जलूस बनाकर मेरे ग़रीबख़ाने पर ले गये हैं और सबने मिलकर कसम खायी है कि जब तक शुभकरण और बख़्तावरसिंह की लाशें न जल जायँगी तब तक हाजी साहब दफ़नाये न जायँगे।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—बख़्तावरसिंह को तो उसके जुर्म पर सज़ा मिलेगी, पर तुमने इस झगड़े से मतलब ?

रोशनुद्दौला—मतलब ! जनाब, रूमीख़ाँ है न ? वे किसी बे मतलब चीज़ का मतलब लोगों को समझा सकते हैं। भाई, मुझे ताज्जुब है कि इस शख़्स को इस तरह आज़ाद क्यों रहने दिया जाता है।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—भाई, जहाँपनाह के कुछ मुंह लग गया है; फिर शहर के चन्द गुंडे उसके साथ हो गये हैं, इसलिए जहाँपनाह शायद उससे डरते भी हैं। और क्या कहा जाय ?

[नेपथ्य में दूर पर 'दीन दीन' के नारे सुन पड़ते हैं।]

शुभकरण—लीजिए, मुझे मकान पर न पाकर शायद जुलूस इधर आ रहा है।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—कोई हर्ज नहीं, तुम बेफ़िक्र रहो; मैं सब कुछ देख लूँगा।

[नारे नज़दीक आते जाते हैं। ये लोग चुपचाप इन नारों को सुनते हैं। कुछ ही देर में बहुत ही नज़दीक 'दीन दीन' सुनायी पड़ता है। इसके

बाद ही जोर जोर से कुछ बातचीत सुन पड़ती है, पर कुछ समझ में नहीं आता। कुछ ही देर में यह आवाज बन्द हो जाती है। दाहिनी ओर के दरावजे से एक बूढ़े सिपाही का प्रवेश।]

सिपाही—(सलाम कर, शेरअफ़ग़नख़ाँ से) हुजूर, एक बहुत बड़े मजमे के साथ, रूमीख़ाँ साहब फाटक पर तशरीफ़ लाये हैं। वे जानना चाहते हैं कि जनाब शुभकरण साहब यहाँ तशरीफ़ रखते हैं या नहीं?

शेरअफ़ग़नख़ाँ—तुमने क्या कहा?

सिपाही—मैंने तो अभी इतना ही कहा है कि मैं देखता हूँ।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—तुम उनसे जाकर कह दो कि शुभरण साहब मेरे पास बैठे हुए हैं। मुझे सारा हाल मालूम हो चुका है। शुभकरण साहब के नौकर बख़्तावरसिंह का पता लगाकर उसे माकूल सज़ा दी जायगी। वे लोग लौट जायँ और जो हाजी मर गया है उसकी लाश को चुपचाप दफ़ना दें।

[सिपाही सलाम कर जाने लगता है।]

रोशनुद्दौला—समझ गये न?

सिपाही—(ठहर कर, फिर से लौटकर, सलाम करते हुए) जी हुजूर।

रोशनुद्दौला—क्या कहोगे?

सिपाही—यह कहूँगा, हुज़ूर, कि जनाब शुभकरण साहब सरकार के पास बैठे हुए हैं। सरकार को सारा हाल मालूम हो चुका है। जनाब शुभकरण साहब के नौकर बख़्तावरसिंह का पता लगाकर उसे माकूल सज़ा दी जायगी। वे लोग लौट जायँ और जो हाजी मर गया है उसकी लाश को चुपचाप दफ़ना दें।

रोशनुद्दौला—ठीक।

[सिपाही का सलाम कर प्रस्थान।]

शेरअफ़ग़नख़ाँ—म्याँ, वह मेरे सिपाहियों का जमादार है। बड़ा पुराना खुर्राट है। इतना अक्लमंद है कि उलमाँ भी क्या होंगे।

[नेपथ्य में फिर जोर जोर से कुछ सुनायी देता है, परन्तु समझ में नहीं आता। कुछ देर के पश्चात् आवाज बन्द हो जाती है। और थोड़ी ही देर में फिर वही सिपाही आता है।]

सिपाही—(सलाम कर) हुजूर, रूमीखाँ साहब फ़रमाते हैं कि मुसलमानों का एक बड़ा मजहबी आदमी, जो हज भी कर आया था, क़त्ल किया गया है। यह मजहबी मामला है। इसमें बख्तावरसिंह का नहीं, जनाब शुभकरण साहब का कसूर है। और जब तक शुभकरण साहब उन्हें नहीं मिलेंगे, तब तक मरहूम हाजी साहब को नहीं दफ़नाया जा सकता। (कुछ रुककर) उन्होंने एक बात और कही है, खुदावन्द।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—क्या ?

सिपाही—(डरते डरते) यह कि अगर जनाब शुभकरण साहब को उन्हें न सौंपा जायगा तो इस सारे मामले के मुताल्लिक उन्हें जहाँपनाह की ख़िदमत में जाना पड़ेगा।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(क्रोध से) ऐसा ? अच्छा तुम उस पाजी से जाकर कह दो कि जो उसे दिखे वह करे। शुभकरण को हरगिज हरगिज उसे नहीं दिया जा सकता।

[सिपाही का सलाम कर प्रस्थान।]

रोशनुद्दौला—म्याँ, यह मामला तो अब बढ़ा।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(बेपरवाही से) बढ़ने दो। यहाँ हाथ में चूड़ियाँ थोड़े ही पहने हैं।

रोशनुद्दौला—हाँ, हाँ, जी, देख लेंगे। शुभकरण को उन भेड़ियों के हवाले नहीं किया जा सकता।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(दृढ़ता से) बेशक, यह हिन्दू-मुस्लिम-सवाल नहीं, यह इन्साफ़ का मामला है।

[नेपथ्य में बड़ी जोर से 'दीन दीन' के नारे सुनायी देते हैं। धीरे-धीरे ये नारे दूर जाते हुए सुन पड़ते हैं।]

रोशनुद्दौला—जुलूस शायद लाल क़िले को जा रहा है।

[उसी सिपाही का प्रवेश।]

सिपाही—(सलाम कर) हुज़ूर रूमीख़ाँ साहब अपने जुलूस के साथ जहाँपनाह की ख़िदमत में तशरीफ़ ले गये।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—जाने भी दो।

[सिपाही जाने लगता है।]

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(सिपाही से) हाँ, देखो, जमादार, शुभकरण साहब के रहने का तुम यहीं इंतज़ाम कर दो। (सिपाही का सलाम करते हुए प्रस्थान। शुभकरण से) ऐसी हालत में, आपका अपने मकान को जाना ठीक नहीं है।

शुभकरण—(गद्गद स्वर में) मैं किन लफ़्ज़ों में हुज़ूर का शुक्रिया अदा करूँ?

शेरअफ़ग़नख़ाँ—इसमें शुक्रिया का क्या सवाल है? यह तो मेरे फ़र्ज़ का मामला है। तुम सल्तनत का काम मेरे मातहत की हैसियत से करते हो। तुम्हारा कोई कसूर न होते हुए भी चन्द बदमाश, चाहे वे किसी भी क़ौम के क्यों न हों, तुम्हारी जान लेने पर आमादा हैं। मेरा फ़र्ज़ है कि मैं अपने नायब की इन बदमाशों की बदमाशी से हिफ़ाज़त करूँ।

रोशनुद्दौला—बेशक, और यह रूमीख़ाँ क्या, अगर इस मामले के मुताल्लिक जहाँपनाह का भी कोई बेजा हुक्म आया तो उसकी भी तामील न की जायगी।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—कभी नहीं, और जो भी उनके नतीजे होंगे, हम सीना सिपर होकर बर्दाश्त करने को तैयार हैं। (रोशनुद्दौला से) भई, जब तक यह मामला न सुलझेगा, तुम्हें भी यहीं ठहरना होगा।

रोशनुद्दौला—मैं बिलकुल तैयार हूँ।

लघु-यवनिका

[नेपथ्य में फिर जोर जोर से कुछ सुनायी देता है, परन्तु समझ में नहीं आता। कुछ देर के पश्चात् आवाज बन्द हो जाती है। और थोड़ी ही देर में फिर वही सिपाही आता है।]

सिपाही—(सलाम कर) हुज़ूर, रूमीख़ाँ साहब फ़रमाते हैं कि मुसलमानों का एक बड़ा मज़हबी आदमी, जो हज भी कर आया था, क़त्ल किया गया है। यह मज़हबी मामला है। इसमें बख्तावरसिंह का नहीं, जनाब शुभकरण साहब का कसूर है। और जब तक शुभकरण साहब उन्हें नहीं मिलेंगे, तब तक मरहूम हाजी साहब को नहीं दफ़नाया जा सकता। (कुछ रुककर) उन्होंने एक बात और कही है, ख़ुदावन्द।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—क्या ?

सिपाही—(डरते डरते) यह कि अगर जनाब शुभकरण साहब को उन्हें न सौंपा जायगा तो इस सारे मामले के मुताल्लिक उन्हें जहाँपनाह की ख़िदमत में जाना पड़ेगा।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(क्रोध से) ऐसा ? अच्छा तुम उस पाजी से जाकर कह दो कि जो उसे दिखे वह करे। शुभकरण को हरगिज़ हरगिज़ उसे नहीं दिया जा सकता।

[सिपाही का सलाम कर प्रस्थान।]

रोशनुद्दौला—म्याँ, यह मामला तो अब बढ़ा।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(बेपरवाही से) बढ़ने दो। यहाँ हाथ में चूड़ियाँ थोड़े ही पहने हैं।

रोशनुद्दौला—हाँ, हाँ, जी, देख लेंगे। शुभकरण को उन भेड़ियों के हवाले नहीं किया जा सकता।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(दृढ़ता से) बेशक, यह हिन्दू-मुस्लिम-सवाल नहीं, यह इन्साफ़ का मामला है।

[नेपथ्य में बड़ी जोर से 'दीन दीन' के नारे सुनायी देते हैं। धीरे-धीरे ये नारे दूर जाते हुए सुन पड़ते हैं।]

रोशनुद्दौला—जुलूस शायद लाल क़िले को जा रहा है।

[उसी सिपाही का प्रवेश।]

सिपाही—(सलाम कर) हुज़ूर रूमीख़ाँ साहब अपने जुलूस के साथ जहाँपनाह की ख़िदमत में तशरीफ़ ले गये।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—जाने भी दो।

[सिपाही जाने लगता है।]

शेरअफ़ग़नख़ाँ—(सिपाही से) हाँ, देखो, जमादार, शुभकरण साहब के रहने का तुम यहीं इंतज़ाम कर दो। (सिपाही का सलाम करते हुए प्रस्थान। शुभकरण से) ऐसी हालत में, आपका अपने मकान को जाना ठीक नहीं है।

शुभकरण—(गद्गद स्वर में) मैं किन लफ़्ज़ों में हुज़ूर का शुक्रिया अदा करूँ?

शेरअफ़ग़नख़ाँ—इसमें शुक्रिया का क्या सवाल है? यह तो मेरे फ़र्ज़ का मामला है। तुम सल्तनत का काम मेरे मातहत की हैसियत से करते हो। तुम्हारा कोई कसूर न होते हुए भी चन्द बदमाश, चाहे वे किसी भी क़ौम के क्यों न हों, तुम्हारी जान लेने पर आमादा हैं। मेरा फ़र्ज़ है कि मैं अपने नायब की इन बदमाशों की बदमाशी से हिफ़ाज़त करूँ।

रोशनुद्दौला—बेशक, और यह रूमीख़ाँ क्या, अगर इस मामले के मुताल्लिक जहाँपनाह का भी कोई बेजा हुक्म आया तो उसकी भी तामील न की जायगी।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—कभी नहीं, और जो भी उनके नतीजे होंगे, हम सीना सिपर होकर बर्दाश्त करने को तैयार हैं। (रोशनुद्दौला से) भई, जब तक यह मामला न सुलझेगा, तुम्हें भी यहीं ठहरना होगा।

रोशनुद्दौला—मैं बिलकुल तैयार हूँ।

लघु-यवनिका

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—लाल क़िले का बाहरी भाग

समय—चौथे दृश्य के पश्चात् तत्काल

[सामने लाल क़िले का एक फाटक, और दीवाल का कुछ हिस्सा, दिखायी देता है। उसके सामने सड़क है। बादशाह मोहम्मदशाह की सवारी सोने के हवादार (खुली पालकी) पर बाहर से क़िले की ओर जाते-जाते रुक गयी है। सवारी में कई सिपाही आदि हैं। हवादार बहुत नजदीक से दिखता है। मोहम्मदशाह की अवस्था, उसका स्वरूप, उसकी वेष-भूषा ठीक वैसी ही है जैसी सन् १७२६ ई० के इतिहास में वर्णित है। सवारी की बड़ी भारी शान है, जो मशालों के प्रकाश में दिखायी देती है। सवारी के सामने ही मुसलमानों के जुलूस का कुछ हिस्सा दिखायी देता है जो 'दीन दीन' के नारों के साथ रूमीख़ाँ के नेतृत्व में रवाना हुआ था। रूमीख़ाँ बादशाह के हवादार के बहुत नजदीक बड़े अदब के साथ खड़ा हुआ है और मोहम्मद-शाह उसे एक कागज दे रहा है।]

मोहम्मदशाह—(कागज रूमीख़ाँ को देते हुए) बस, और कुछ, रूमीख़ाँ? वज़ीर को आम हुक्म लिख दिया गया है कि जहाँ कहीं भी शुभकरण हो, उसे तलाश कर तुम्हारे सिपुर्द कर दिया जाय।

रूमीख़ाँ—(कागज लेकर, तीन बार आदाब बजाकर) नवाज़िश है जहाँपनाह की, अगर मरहूम हाफिज़ न होते, हज न किये होते, और यह मज़हबी आदमी क़त्ल न होता, तो ख़ुदावन्द को इस तरह हरगिज़ तकलीफ़ न दी जाती। खुशकिस्मती हम लोगों की कि जहाँपनाह का नियाज़ सवारी में ही हासिल हो गया।

मोहम्मदशाह—(मुस्कराकर) मज़हबी मामलों में ख़ुदा मददगार होता है। (कुछ रुककर) और कुछ?

रूमीख़ाँ—(विना बादशाह की ओर पीठ किए पीछे को हटते हुए) सब कुछ तो मिल गया, खुदावन्द।

[सवारी क़िले की तरफ़ रवाना होती है। और जुलूस प्रसन्नता से 'दीन दीन' के जोर के नारे लगाता हुआ दूसरी ओर जाता है।]

लघु-यवनिका

छठवाँ दृश्य

स्थान—सादुल्लाख़ाँ के चौक का एक हिस्सा

समय—उषःकाल

[चौक का यह वही हिस्सा है, जो पहले दृश्य में था। उपर्युक्त घटनाओं तथा उसके वाद की कुछ वातें होते-होते पूर्व दिशा में प्रकाश फैलने का समय हो गया है। कुछ पंजावी दौड़ते हुए आते और हाजी हाफ़िज के मकान के पास खड़े होकर चिल्लाते हैं।]

एक—नहीं मिला, काफ़िर शुभकरण नहीं मिला।

दूसरा—जहाँपनाह के हुक्म पर भी नहीं।

तीसरा—शेरअफ़ग़न भी काफ़िर शुभकरण के साथ काफ़िर हो गया।

चौथा—हम जामे मस्जिद में विना इन्साफ़ के सुवह की नमाज़ न होने देंगे।

पाँचवाँ—हमारे वुज़ुर्ग जनाव रूमीख़ाँ साहव अरवों, एवीसीनियनों और कुस्तुन्तुनियों के साथ जामे मस्जिद में तशरीफ़ ला रहे हैं।

छठवाँ—पंजावियों का मामला है और हर पंजावी को जामे मस्जिद जाना चाहिए।

[वहुत से लोग जल्दी-जल्दी अपने-अपने घरों से निकलते हैं।]

सातवाँ--काफ़िर शुभकरण के मिलने पर ही नमाज़ होगी।

आठवाँ--और काफ़िर शुभकरण और उसके नौकर की लाश जलने पर ही हाजी हाफ़िज़ साहब को दफ़नाया जायगा।

[बहुत से लोग चिल्लानेवालों के साथ हो जाते हैं और 'दीन दीन' के जोर के नारे लगाता हुआ यह सब जुलूस आगे बढ़ता है।]

लघु-यवनिका

सातवाँ दृश्य

स्थान--जामे मस्जिद का भीतरी हिस्सा

समय--प्रातःकाल

[मस्जिद के चौक से मस्जिद के पूर्व उत्तर तथा दक्षिण के दरवाजे और उसकी दीवाल के कुछ हिस्से दिखायी देते हैं ? चौक, पंजाबियों, अरबों, एबीसीनियनों और तुर्कों से भरा हुआ है। रूमीख़ाँ नमाज पढ़ने-वाले के बहुत नजदीक खड़ा है। कोलाहल हो रहा है।]

रूमीख़ाँ--(जोर से) हाँ, कभी नहीं, बिना न्साफ़ हुए नमाज़ कभी नहीं पढ़ी जा सकती।

नमाज पढ़नेवाला--लेकिन नमाज़ का वक़्त निकला जा रहा है।

रूमीख़ाँ--जनाब ! जहाँपनाह के हुक्म की उदूल-हुक्मी हुई है, जहाँपनाह के !

[नमाज पढ़ने वाला इतने पर भी जब नमाज पढ़ने के लिए बढ़ता है, तब भीड़ के कुछ लोग उसका रास्ता रोक लेते हैं। उत्तर के दरवाजे से वजीर कमरुद्दीनख़ाँ का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश। कमरुद्दीनख़ाँ अधेड़

अवस्था का, गेहुँएँ रंग का, ऊँचा-पूरा, मोटा ताजा आदमी है। वजीर के पूरे लिवास में है।]

एक पंजावी--(कमरुद्दीनखाँ को देखकर) लीजिए, लीजिए, वज़ीर साहव तशरीफ़ ले आये।

दूसरा पंजावी--हाँ, हाँ, अव इन्साफ़ होगा, पूरा-पूरा इन्साफ़।

[भीड़ में सन्नाटा हो जाता है।]

कमरुद्दीनखाँ--वरादरान-ए-इस्लाम! मैं आपको इस वात का यक़ीन दिलाने को हाज़िर हुआ हूँ कि इस मामले का पूरा-पूरा इन्साफ़ किया जायगा। कुसूर करनेवालों को वड़ी से वड़ी सज़ाएँ दी जायँगी। आप सुवह की नमाज़ हो जाने दीजिए। (चुप हो जाता है।)

[सव लोग एक दूसरे की तरफ़ देखते हैं; पर नमाज पढ़नेवाले के जाने का रास्ता नहीं छोड़ा जाता। रूमीखाँ वजीर की तरफ़ वढ़ता है।]

रूमीखाँ--(जोर से) हुज़ूरवाला! जव हाजी हाफ़िज़ मरहूम की लाश अव तक दफ़नायी नहीं गई तव सुवह की नमाज कैसे पढ़ी जा सकती है?

कमरुद्दीनखाँ--लेकिन....लेकिन, रूमीखाँ साहव, लाश को दफ़ना देना चाहिए।

रूमीखाँ--वह तव तक नहीं हो सकेगा, हुज़ूरवाला, जव तक शाही फ़र-मान के मुताविक काफ़िर शुभकरण हम लोगों के सुपुर्द न कर दिया जायगा।

कमरुद्दीनखाँ--लेकिन मैंने अर्ज़ किया न कि कुसूर करने वालों को वड़ी से वड़ी सज़ाएँ दी जायँगी।

रूमीखाँ--यह सवाल ही इस वक़्त नहीं है, जनावआली, इस वक़्त तो सवाल है शाही फ़रमान की तामीली का, उसी की तामीली पर मरहूम हाजी साहव का दफ़नाना मुनहसिर है, और उनके दफ़नाने पर नमाज़ का होना।

[पूर्वी फाटक से कुछ सैनिकों के साथ रोशनुद्दौला का प्रवेश। भीड़ की दृष्टि उस ओर घूमती है।]

पंजावी—ये काफ़िर शुभकरण के दोस्त काफ़िर शेरअफ़गनख़ाँ का दोस्त आया।

दूसरा पंजावी—चुप ! चुप ! यह वड़ा मजहवी आदमी है।

एक तुर्क—जानता नहीं, चाँदनी चौक की इनकी मस्जिद।

एक अरव—और कदमें-शरीफ़ में इनकी ख़ैरात।

एक एवीसीनियन—और यास्का के शेख़ भीख की दरगाह में इनकी खिदमात।

[इतने ही में दक्षिणी फाटक से कुछ सैनिकों के साथ शेरअफ़गनख़ाँ आता है। अव तो वड़ा कोलाहल मचता है। पंजावी, तुर्क, एवीसीनियन और अरव उस ओर वढ़ते हैं। पंजावी जूते उछाल-उछाल कर शेरअफ़गन-ख़ाँ के ऊपर फेंकते हैं। शेरअफ़गनख़ाँ के सैनिक इन पर हमला करते हैं; इसके वाद ही रोशनुद्दौला के सैनिक भी। मारकाट शुरू होती है। कोलाहल और गालियों से कानों के परदे फटने लगते हैं।]

लघु-यवनिका

आठवाँ दृश्य

स्थान—शुभकरण के मकान की ज़मीन

समय—प्रातःकाल

[मकान पूरा गिरा दिया गया है, जिसका मलमा फैला हुआ है। गिरे हुए मकान की वीच की जमीन में गढ़ा खोदा जा रहा है। हाजी हाफ़िज की लाश पलंग पर रखी हुई है। वहुत से मुसलमान खड़े हैं।]

एक—शेरअफ़गन और रोशनुद्दौला वच गए तो क्या हुआ, देखना है शुभकरण कव तक वचता है?

दूसरा--और बच भी गया तो क्या हुआ। मकान गया, दौलत गयी, मकान की एक ईंट भी तो न बची।

तीसरा--अभी इन्हीं ईंटों से इसी जगह मरहूम हाजी साहब का मक़बरा जो बनेगा।

[कुछ देर सब चुप रहते हैं।]

चौथा--क्यों, भाई, मस्जिद के दंगे के बाद शहर में कितने हिन्दू कत्ल किये गये?

पाँचवाँ--मस्जिद में तो, भई, हम आपस में लड़ मरे; असल में तो कुर्बानियाँ उसके बाद हुई हैं।

छठवाँ--और अभी भी हो ही रही हैं?

गड़ा खोदनेवाला--(ज़ोर से) लीजिए, साहब, तैयार है।

सातवाँ--हाँ, हाँ, भाई, जल्दी दफ़ना कर चंपत हो, रूमीख़ाँ साहब न आ जायँ।

आठवाँ--हाँ, वे हमसे अमन रखने के लिए कह गये थे।

नवाँ--(मुस्कराते हुए) नहीं, नहीं, वे नहीं आयँगे।

सातवाँ--यह क्यों?

नवाँ--जाने भी दो, तुम्हे इससे क्या मतलब? मैं जानता हूँ, उन्हें अपना काम करने दो, हम अपना करें।

[कई लोग मिलकर हाजी हाफ़िज़ की लाश को उठाते हैं।]

लघु-यवनिका

नवाँ दृश्य

स्थान--शेरअफ़ग़नख़ाँ के महल का एक कमरा

समय--प्रातःकाल

[दृश्य वैसा ही है जैसा चौथे दृश्य में था ; अन्तर इतना ही है कि शमादान नहीं है। दरवाजों से प्रातःकाल का प्रकाश कमरे को प्रकाशित किये हुए है। शेरअफ़ग़नख़ाँ, रोशनुद्दौला और शुभकरण बैठे हुए हैं। शेरअफ़ग़नख़ाँ और रोशनुद्दौला के मुख पर क्रोध तथा शुभकरण के मुख पर चिन्ता के भाव हैं। शेरअफ़ग़नख़ाँ के दाहिनी कलाई में पट्टी बँधी है।]

रोशनुद्दौला—तुम मकान के गिराये जाने और दौलत के लुटने का मुतलक़ अफ़सोस न करना, शुभकरण, उससे भी बड़ा मकान बनवा देने और उससे भी ज़्यादा दौलत का इंतज़ाम करने की रोशनुद्दौला ज़िम्मेदारी लेता है।

शुभकरण—आपकी ख़ैरात सल्तनत में किससे छिपी है, हुज़ूरवाला? मुझे न मकान चाहिए, और न दौलत, ख़ुदावन्द। ईश्वर की दया से औरत बच्चे बच गये, बनिया हूँ, कहीं से जाकर दो पैसे कमा लूँगा। मुझे अफ़सोस है तो सिर्फ़ स बात पर है कि इस नाचीज़ के लिए आप लोगों को कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ी।

शेरअफ़ग़नख़ाँ—तुम्हारे लिए....तुम्हारे लिए नहीं, शुभकरण, एक उसूल के लिए। जिस झगड़े का मज़हब से कोई ताल्लुक़ नहीं, उसे मज़हबी शक्ल दी गयी। बिना वजह तुम्हारी क़ुर्बानी माँगी गयी। मैं एक बेकुसूर को इस तरह कुर्बान नहीं कर सकता, और इसके लिए अभी भी इससे भी ज़्यादा तकलीफ़ें बर्दाश्त करने को तैयार हूँ। मेरे दोस्त रोशनुद्दौला तैयार हैं। शुभकरण, मुझे हिन्दुस्तान के बादशाह मोहम्मदशाह से ज़्यादा ....दुनिया के बादशाह....दुनिया के बादशाह ख़ुदावन्द करीम.... ख़ुदावन्द करीम पर भरोसा है।

यवनिका

समाप्त

कृष्णकुमारि

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र—

भीमसिंह—मेवाड़ का राणा

—मेवाड़ की पटरानी

कृष्णकुमारी—मेवाड़ की राजकुमारी

दौलतसिंह—मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

ज्वानसिंह—मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

अजीतसिंह—मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

संग्रामसिंह—मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

दौलतराव सींधिया—ग्वालियर का मराठा राजा

स्थान—उदयपुर

समय—सन् १८०८ ई०

उपक्रम

स्थान—राजप्रासाद में 'सूर्य-महल'

समय—सायंकाल

['सूर्य-महल' एक विशाल आलय है। दीवालें पत्थर की हैं और पत्थर के ही खुदावदार मोटे खंभों पर महल की छत है। दीवालों में कई दरवाज़े तथा खिड़कियाँ हैं। खिड़कियों में संगमर्मर की जाली है। दरवाज़ों की चौखटों और किवाड़ों में खुदाव का काम है। दरवाज़ों और खिड़कियों से बाहर दूर पर अरावली पर्वत की शिखरावली दृष्टिगोचर होती है। सूर्य की सुनहरी किरणों से बाहर का दृश्य आलोकित है। महल की पृथ्वी पर रंग बिरंगा सुन्दर क़ालीन है। क़ालीन के बीच में राजगद्दी है। गद्दी ऊँची है और ज़रदोज़ी के काम से चमकते हुए मखमली पोश से ढकी है। गद्दी पर इसी प्रकार की मखमली खोली से आच्छादित मसनद लगा है। गद्दी के चारों ओर चार गंगा जमुनी चोबों पर मखमली चँदवा है। चँदवे पर भी ज़रदोज़ी का काम है और चँदवे के चारों तरफ़ बादले की सुनहरी झालर लटक रही है। राजगद्दी पर भीमसिंह बैठा हुआ है। भीमसिंह की अवस्था लगभग ४५ वर्ष की है। रंग गेहुँआ है और शरीर ऊँचा-पूरा तथा गठा हुआ। बड़ी बड़ी आँखें, ऊपर को चढ़ी हुई मूँछें तथा दाढ़ी हैं। ललाट पर केशर का त्रिपुण्ड लगा है। सिर पर मन्दील है। पगड़ी के पीछे और दोनों बगलों में बालों के लंबे पट्टे दिखायी देते हैं। मन्दील पर सामने रत्नजटित तथा मोती पन्ने और माणिक के लटकनों से युक्त सिरपेंच है और दाहनी ओर सुनहरी तुर्रा। शरीर पर गले से

पिंडलियों तक लंबा सफ़ेद घेरदार जामा है। कमर में केशरी रंग का लड़ीदार दुपट्टा बँधा है, जिसके बाई ओर रत्नजटित स्वर्ण की मूठ की तलवार और दाहिनी ओर ऐसी ही मूठ की कटार है। जामे के नीचे पैरों तक सफ़ेद रंग का ही पाजामा है। गले तथा भुजाओं पर स्वर्ण के रत्नजटित आभूषण हैं। भीमसिंह की गद्दी के दाहिनी तरफ़ एक और ऐसी ही गद्दी है, पर राजगद्दी से छोटी। इस पर चँदवा नहीं है। इस गद्दी पर दौलतराव सींधिया बैठा हुआ है। सींधिया की उम्र २८ साल के लगभग है। वह गेहुँए रंग का कुछ ठिगना और कुछ मोटा व्यक्ति है। उसके सिर पर भी पट्टे हैं। छोटी-छोटी मूँछें हैं, और गल-मुच्छे। सींधिया मराठी ढंग का अंगरखा पहने है और सिर पर मराठी ढंग की ही पगड़ी बाँधे है। भीमसिंह की गद्दी के बाई ओर तीन गद्दियाँ और हैं। ये और भी छोटी हैं तथा श्वेत वस्त्र से ढकी हुई। इन पर क्रमशः दौलतसिंह, ज्वानसिंह और अजीतसिंह बैठे हुए हैं। तीनों का वर्ण गेहुँआ है। तीनों ऊँचे-पूरे शरीर के हैं। दौलतसिंह कुछ मोटा और ज्वानसिंह तथा अजीतसिंह दुबले हैं। दौलतसिंह की अवस्था है लगभग ६५ वर्ष की और ज्वानसिंह की ५० तथा अजीतसिंह की ३० साल के करीब। दौलतसिंह के पट्टे तथा मूछें दाढ़ी सफ़ेद हो गये हैं। ज्वानसिंह और अजीतसिंह के दाढ़ी नहीं है, छोटी छोटी मूछों और पट्टों के काले बाल हैं। तीनों की वेष-भूषा भीमसिंह से मिलती जुलती है; पर इनके सिरों पर मन्दील न होकर बसंती रंग की पगड़ियाँ हैं। महल में एक विचित्र प्रकार का सन्नाटा छाया हुआ है। भीमसिंह का सिर झुका हुआ है और उसके मुख पर महान् चिन्ता का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। सींधिया उत्सुकता से भीमसिंह की ओर देख रहा है। अजीतसिंह की दृष्टि सींधिया की तरफ़ है। दौलतसिंह की नज़र पृथ्वी की ओर है। उसके मुख पर अत्यधिक क्रोध दृष्टिगोचर होता है और आँखों

से आग सी बरस रही है। ज्वानसिंह शून्य दृष्टि से एक दरवाजे से बाहर अरावली-पर्वत-श्रेणियों की तरफ़ देख रहा है।]

सींधिया--(कुछ देर बाद मुस्कराते हुए भीमसिंह से) आपके सामने मैंने एक समस्या उपस्थित कर दी; क्यों दरबार ?

[सींधिया की आवाज सुन कर भीमसिंह चौंक सा पड़ता है। बाकी सब लोग भी सींधिया की ओर देखने लगते हैं। आगे के भीमसिंह और सींधिया के संभाषण में कभी ये भीमसिंह और कभी सींधिया की तरफ़ देखते हैं; कभी कोई किसी की ओर और कभी किसी की, पर इन दोनों के संभाषणों के बीच में बोलता कोई नहीं।]

भीमसिंह--(धीरे धीरे सिर उठा, सींधिया की ओर देखते हुए) मैं समझता हूँ, श्रीमन्त, इसके पूर्व जीवन में मेरे सम्मुख कभी ऐसी समस्या ही न आयी थी।

सींधिया--जीवन ही जब एक बड़ी भारी समस्या है, तब उसमें इस प्रकार के छोटे मोटे प्रश्नों का उठते रहना एक साधारण सी बात है।

भीमसिंह--(आश्चर्य भरे स्वर में) छोटे मोटे प्रश्न ! जो बात आपने मुझे कही है, उसे आप छोटा सा प्रश्न समझते हैं ?

सींधिया--(अट्टहास कर) सर्वथा ! दरबार साहब, जब हमारे देश के जीवन-मरण के प्रश्न उठे हुए हैं, कल के आये हुए अंग्रेज़ समस्त देश को हजम कर डकार तक नहीं लेना चाहते, तब अपने को सूर्य और चंद्र के वंशज कहने वाले राजपूत एक दुधमुँही बच्ची के लिए आपस में लड़ें, इससे अधिक लज्जा की और कौन सी बात हो सकती है ? देश के जीवन के सामने एक बच्ची के जीवन का प्रश्न छोटा सा प्रश्न नहीं तो और क्या है ? मैंने जो मार्ग आपको बताया है, उससे दो बातें होंगी--एक तो मेरे साथ कृष्णकुमारी का विवाह होते ही मारवाड़ के महाराजा मानसिंह और जयपुर के राजा जगतसिंह दोनों में से किसी को कृष्णकुमारी न

मिलने से इनका आपसी झगड़ा समाप्त हो जायगा और आपसे भी ये न झगड़ेंगे, दूसरे राजपूत और मराठे एक सूत्र में बँध कर देश में सच्चे स्व-राज्य की स्थापना कर सकेंगे। (कुछ रुककर) दरबार, अवस्था कम होते हुए भी मुझे अनुभव कम नहीं। गद्दी पर बैठते ही निरन्तर संग्राम और संधियाँ करते करते मुझे देश की परिस्थिति का जैसा अनुभव है, अन्य को नहीं। न जाने कितनी बार मैं जीता हूँ और कितनी बार हारा। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को मेरी और होल्कर की फूट ने जिस प्रकार क्षति पहुँचायी वह मुझे असाई, अरगाँव और लसवाड़ी में अंग्रेजों के साथ युद्ध के समय मालूम हुआ। हम दोनों में मेल होते ही उन युद्धों की पराजय के बाद जो संधि अंग्रेजों से हुई थी उसमें बिना युद्ध के ही जो परिवर्तन हुए वह आप जानते हैं। इन परिवर्तनों में सबसे महान् बात यह हुई है कि राजस्थान से मेरा संबन्ध रहेगा, अंग्रेज आप लोगों से सीधा संबन्ध न रख सकेंगे। मराठों को एक कर अब मैं मराठों और राजपूतों को एक करना चाहता हूँ, जिसके लिए अंग्रेजों के साथ इस नयी सन्धि के कारण मुझे पूरा अवसर प्राप्त हो गया है।

भीमसिंह--किन्तु, श्रीमन्त, आप तो राठौर दरबार की ओर से मुझे यह कहने को पधारे थे कि मैं कृष्णा का विवाह राजा जगतसिंह से न कर महाराजा मानसिंह से करूँ।

सींधिया--हाँ, मैं आया तो इसीलिए था, परन्तु जब मैंने इस सम्बन्ध में और विचार किया तब मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि इससे जो झगड़ा राजपूताने में इस समय उठ खड़ा हुआ है वह निपटेगा नहीं। राठौर और कछवाहों का झगड़ा चलता रहेगा, इतना ही नहीं, कछवाहे शिशोदियों को राठौरों के साथ समझ आप से भी लड़ते रहेंगे; और फिर तो अंग्रेजों के बोलबाले में कोई सन्देह ही न रह जायगा।

भीमसिंह--और आपके महाराजा मान की ओर से आने पर भी आपके साथ कृष्णा का विवाह महाराजा मान को बुरा न...

सींधिया—(**बीच ही में**) इस बात को आप छोड़ दीजिए। मेरे साथ कृष्णकुमारी का विवाह होने पर महाराज मान की शक्ति है कि वे उफ़ तक कर सकें ? (**कुछ रुककर**) और फिर उस सब को तो मैं निपटाऊँगा। निपटाने की शक्ति रखता हूँ, दरबार। आपको तो अब निर्णय यह करना है कि आप सींधिया को मित्र बनाना चाहते हैं या शत्रु। मित्र सींधिया आपको भारत-सम्राट् बना सकता है, शत्रु सींधिया.... (**कुछ रुककर**) खैर जाने दीजिए उस बात को। (**फिर कुछ रुककर**) फिर...फिर मैं आपसे कोई नयी बात नहीं चाहता। राजपूतों ने तो मुसलमानों तक को लड़कियाँ दी है।

भीमसिंह—शिशोदियों ने नहीं, श्रीमन्त।

सींधिया—(**फिर एक कहकहा लगाकर**) शिशोदियों ने नहीं ! शिशोदिया क्या राजपूतों से अलग हैं ? फिर शिशोदियों ने यदि मुसलमानों को लड़कियाँ नहीं दीं, तो उन राठौरों और कछवाहों को दीं, जिन्होंने मुसलमानों को दी थीं। (**कुछ रुककर**) और...और, दरबार, आप तो कृष्णकुमारी को मुझे, एक हिन्दू को देकर एक महान् बात करेंगे; राजपूताने का ही नहीं, भारत का इतिहास बदल देंगे। एक पुरानी और एक नयी जाति में, एक ऐतिहासिक गौरव से गौरवान्वित और दूसरी नवीन रक्त से प्लावित जाति में रक्त का संबंध स्थापित कर एक नये इतिहास का निर्माण करायँगे। अन्तिम निष्कर्ष आप जानते ही हैं। आज आप केवल हिन्दू-पति कहलाते हैं, पर इसके बाद आप होंगे भारत-सम्राट्।

भीमसिंह—परन्तु शिशोदियों का आदर्श वाक्य है—'जो दृढ़ राखै धरम को ताहि रखै करतार।' जो हिन्दू-धर्म वर्ण-व्यवस्था पर अवलंबित है उसे हम मानते हैं, श्रीमन्त।

सींधिया—और हम क्या हिन्दू-धर्म से पृथक हैं ? दरबार, हम भी हिन्दू हैं। हमें भी हिन्दू-धर्म का, हिन्दू-जाति का, हिन्दुस्थान का अभिमान है। वर्ण-व्यवस्था धर्म से नहीं, समाज से संबंध रखती है। फिर जो वर्ण-

व्यवस्था कर्म के अनुसार थी, वह जन्म के अनुसार हो गयी है। विश्वामित्र राजर्षि होने पर भी कर्म के कारण ब्रह्मर्षि हो गये थे। देवयानी का ब्राह्मण कन्या होने पर भी क्षत्रिय ययाति से विवाह हुआ था। आज मराठों से अधिक कौन वर्ण क्षात्र-धर्म का पालन कर रहा है ?

[भीमसिंह का फिर से सिर झुक जाता है। कुछ देर तक सन्नाटा रहता है।]

सींधिया—(खड़े होते हुए) अच्छी बात है, आप अच्छी तरह सोच लें; अपने भाई बेटों, सरदारों से सम्मति ले लें। आज होली भी है। कल सन्ध्या तक उत्तर दे दें। इतना मैं फिर कहे देता हूँ कि मैंने आपके सामने कोई समस्या नहीं रखी है। एक बहुत छोटा सा, एक बिलकुल मामूली सा प्रश्न उपस्थित किया है। देश के जीवन के सामने एक दुवमुँही बच्ची के जीवन का प्रश्न एक ऐसी छोटी सी बात है जिसके निर्णय में कोई समय ही नहीं लगना चाहिए। फिर मेरा प्रस्ताव यदि आपने स्वीकृत किया तो वह देश की समस्या को हल कर देगा।

[सींधिया दरवाजे की ओर बढ़ता है। भीमसिंह तथा सभी उपस्थित व्यक्ति, जो सींधिया के खड़े होते ही खड़े हो गये थे, उसे दरवाजे तक पहुँचाने जाते हैं। भीमसिंह बिना कुछ कहे, उसके अभिवादन का उत्तर दे, उसे दरवाजे पर विदा करता है। अजीतसिंह उसके साथ जाता है। भीमसिंह और शेष सब व्यक्ति लौटकर अपने अपने स्थान पर बैठते हैं। कोई कुछ नहीं बोलता। दृश्य के आरंभ में जो जिस प्रकार देख रहा था, उसी प्रकार देखने लगता है। कुछ ही देर में अजीतसिंह लौटकर अपनी गद्दी पर बैठ भीमसिंह की ओर देखता है।]

भीमसिंह—(धीरे धीरे सिर उठाकर, अजीतसिंह की ओर देखकर) बोलो, ठाकुराँ, क्या किया जाय, कुछ कहो ?

अजीतसिंह—मैं, अन्नदाता, मैं कहूँ ? (दौलतसिंह की ओर इशारा कर) रावजी के बैठे उनके पहले मैं क्या बोल सकता हूँ ?

भीमसिंह—तुमको मैंने इसलिए बोलने को कहा है कि तुम सींधिया के अधिक संपर्क में हो, उसके मनसूबों से अधिक परिचित हो।

अजीतसिंह—जहाँ तक उसके मनसूबों का संबंध है, उन्हें, अन्नदाता, भगवान् एकलिंगजी के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता, पर इतना अवश्य है कि हम लोगों का अस्वीकृति का उत्तर मिलने पर वह चुपचाप बैठनेवाला जीव नहीं।

दौलतसिंह—(क्रोध से) तो क्या तुम यह समझते हो कि उसे स्वीकृत का उत्तर मिल सकता है? (क्रोध से जिसके ओठ फड़कने लगे हैं।) दौलतसिंह के जीवित रहते शिशोदियों की राजकुमारी शूद्र को दी जाय, यह संभव नहीं। मुझे तो आश्चर्य यह है कि उसके मुख से ऐसे अधम प्रस्ताव के निकलते ही अन्नदाता ने उसे तत्काल क्यों न ठुकरा दिया, उसे गणेश-ड्योढ़ी और त्रिपोलिया के बाहर क्यों न निकलवा दिया।

[दौलतसिंह के भाषण के कारण फिर सन्नाटा छा जाता है। भीमसिंह का सिर झुक जाता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

भीमसिंह—(सिर उठाकर) रावजी, मेरे उसके अधम प्रस्ताव को तत्काल ठुकरा न देने का कारण है मेवाड़ की निर्बलता, मेवाड़ का अकेलापन। उसे गणेश-ड्योढ़ी और त्रिपोलिया से बाहर न निकलवाने का कारण है मराठों की इस समय की महान् वीरता और सींधिया की पीठ पर अंग्रेजों का ही रहना नहीं, पर राजपूतों में भी राठौरों का रहना।

दौलतसिंह—किन्तु, अन्नदाता, आपके पूर्वज महाराणा प्रताप के समय भी सारा भारत सम्राट् अकबर के साथ था, मेवाड़ सर्वथा अकेला था, महाराणा राजसिंह के समय भी अकेले मेवाड़ ने औरंगज़ेब की टिड्डी दल सेना का सामना कर उसे परास्त किया था।

भीमसिंह—यह ठीक है, पर उस समय मेवाड़ निर्बल नहीं था।

दौलतसिंह—और आज भी मेवाड़ निर्बल नहीं है, अन्नदाता। मेवाड़ का आदर्श वाक्य—'जो दृढ़ राखै धरम को ताहि रखै करतार' आज भी मेवाड़ निवासियों की नस-नस में नये रक्त का संचार कर देता है। आज भी मेवाड़ के राजपूतों के सोलहों मुख्य वंश—चोड़ावत, संगावत, मेगावत, जूगावत, मुक्तावत आदि, इन वंशों के सरदार—राजा, राव, रावत, ठाकुर आदि अपनी अपनी सेनाओं के साथ अन्नदाता की आज्ञा पाते ही मेवाड़ के लाल झंडे के नीचे एकत्रित हो सकते हैं। ये सब वैसे ही पराक्रमी हैं, अन्नदाता, जैसे पहले थे। मेवाड़ के भीलों में आज भी वही बल है। युद्ध का शंख फूँकते ही सहस्रों की संख्या में वे अपने अपने धनुप-बाणों को लेकर उपस्थित हो जायँगे। इन राजपूतों और भीलों में जीवन-संचार करने वाले चारणों का प्रलय नहीं हो गया है, अन्नदाता।

भीमसिंह—आप स्वप्न देख रहे हैं, रावजी।

दौलतसिंह—(आश्चर्य से) मैं स्वप्न देख रहा हूँ, अन्नदाता?

भीमसिंह—हाँ, आप स्वप्न देख रहे हैं, रावजी।

दौलतसिंह—तो आप सींधिया का प्रस्ताव स्वीकार करने जा रहे हैं?

भीमसिंह—सो मैं नहीं कहता, किन्तु इसी के साथ आज मेवाड़ एक ओर राठौरों और कछवाहों का, दूसरी ओर मराठों का और तीसरी ओर अंग्रेज़ों का सामना नहीं कर सकता। कृष्णा का विवाह यदि महाराजा मान से किया गया, अथवा राजा जगत से, तो मेवाड़ पर जो आपत्ति आयगी वह अभूतपूर्व होगी। एक ओर कृष्णा को यदि सींधिया को देना बुरा है, तो दूसरी ओर महाराजा मान या राजा जगत से उसका विवाह करना उससे भी बुरा।

[भीमसिंह का सिर फिर झुक जाता है। कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

भीमसिंह—(ज्वानसिंह से) कुँवरजी, तुम क्या कहते हो?

ज्वानसिंह—(चौंककर) मैं...मैं अन्नदाता ?

भीमसिंह—हाँ, तुम भी तो अपनी सम्मति दे सकते हो।

ज्वानसिंह—मैं...मैं कोई सम्मति नहीं रखता, अन्नदाता, मैं तो आज्ञा का पालन करना जानता हूँ।

[फिर निस्तब्धता।]

भीमसिंह—(कुछ देर बाद अजीतसिंह से) ठाकुराँ, तुम्हारी बुद्धि की ही सबसे अधिक प्रशंसा है, तुम्हें कोई मार्ग सूझता है ?

अजीतसिंह—केवल एक, अन्नदाता।

भीमसिंह—क्या ?

अजीतसिंह—स्पष्टवादिता के लिए आप क्षमा करेंगे।

भीमसिंह—इस समय भी स्पष्ट न कहोगे तो स्पष्ट कहने का कौनसा समय आयगा ?

अजीतसिंह—राजकुमारी का निधन।

[सब एक दम से चौंक पड़ते हैं और एकटक अजीतसिंह की ओर देखने लगते हैं।]

अजीतसिंह—मैं जानता हूँ, अन्नदाता, मेरा यह प्रस्ताव हृदय और मस्तिष्क दोनों के लिए भूकंप के सदृश है; मैं इसकी कठोरता, और कठोरता क्या, क्रूरता से अनभिज्ञ नहीं हूँ; परन्तु कुल, देश, और राजकुमारी सभी के लिए मेरी दृष्टि से राजकुमारी का निधन अनिवार्य वस्तु हो गयी है। महाराजा मान और राजा जगत दोनों में से यदि किसी भी एक से अब हमने राजकुमारी के विवाह का निश्चय किया तो सींधिया उस विवाह को कदापि न होने देगा। मेवाड़ पर संकट आयगा, इतना ही नहीं, अन्त में राजकुमारी भी सींधिया के हाथ में जायगी। राजपूत के अतिरिक्त शिशोदियों ने अपनी कन्या कहीं नहीं दी। विधर्मी या शूद्र को शिशोदिया-कुमारी कभी नहीं मिली। जो शिशोदिया-कुल में कभी न हुआ वह होगा,

कुल की प्रतिष्ठा धूल में मिलेगी और राजकुमारी का जीवन भी....

[अजीतसिंह चुप हो जाता है। कोई कुछ नहीं बोलता। भीमसिंह के नेत्रों में आँसू आ जाते हैं।]

भीमसिंह—(थोड़ी देर के बाद भर्राये हुए स्वर में) किन्तु... किन्तु, अजीत... (चुप हो जाता है।)

अजीतसिंह—मैं जानता हूँ, अन्नदाता, कि आप पिता हैं, और पुत्री के वध की अनुमति पिता को देने का क्या अर्थ होता है; परन्तु क्या किया जाय ? ऐसे अवसरों पर स्नेह को मोह समझ उसका परित्याग ही करना पड़ता है। फिर राजपूतनियों के लिए प्राण-त्याग कोई बड़ी भारी बात नहीं है, जौहर में...

दौलतसिंह—(बीच ही में) जौहर ! जौहर की बात न करो, ठाकुराँ। वह...वह था बलिदान; यह...यह है हत्या ! वह महान्... महानतम वस्तु थी, यह निकृष्ट...निकृष्टतम बात है। (कुछ रुककर)

हम पुरुष अपनी रक्षा...अपने बचाव के लिए एक स्त्री...एक बच्ची ...अनजान, अबोध, दुधमुँही बच्ची की हत्या की बात सोचें...यह... यह षड्यन्त्र रचें ! (उठते हुए) मैं...मैं यह सब सुन...सुन नहीं सकता ...सोच...सोच नहीं सकता।

[दौलतसिंह का शीघ्रता से प्रस्थान। कुछ देर निस्तब्धता।]

अजीतसिंह—अन्नदाता, मैं कोई नया प्रस्ताव नहीं कर रहा हूँ; हमारे कुल में जन्मते ही कन्याओं का वध किया गया है।

भीमसिंह—वह...वह दूसरी बात है, अजीत, पर कृष्णा को पाल पोस कर, बड़ा कर, उसे सोलह वर्ष की बना, विवाह...विवाह के समय उसका...उसका...

[भीमसिंह रो पड़ता है। कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

अजीतसिंह—मुझे बड़ा ही खेद है, अन्नदाता, कि मैं आपको इस प्रकार

कष्ट दे रहा हूँ, पर क्या करूँ, विवश हूँ। आपने मुझे अपनी सम्मति... स्पष्ट सम्मति देने की आज्ञा दी। मेरे कर्तव्य ने भी मुझे स्पष्ट कहने को प्रेरित किया। क्या करूँ ?

भीमसिंह--(भर्राये हुए स्वर में) मैं तुम्हें दोष नहीं देता, अजीत, किन्तु...किन्तु...(चुप हो जाता है।)

[फिर निस्तब्धता।]

भीमसिंह--(धीरे धीरे) यह अमानुषिक कृत्य करेगा कौन, और वर्ष के इन त्योहारों के दिनों... ?

अजीतसिंह--(कुछ देर विचार करने के बाद, ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) अमानुपिक कृत्य, नहीं, महान् कर्तव्य, अन्नदाता। इसे...इसे करेंगे कुँवर ज्वानसिंहजी। कुल, देश और अपनी भैन की, सभी की सम्मान-रक्षा के लिए कुँवरजी...कुँवरजी इसे करेंगे।

[भीमसिंह ज्वानसिंह की ओर देखता है। ज्वानसिंह सिर झुका लेता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। फिर एकाएक ज्वानसिंह अपने कमरबन्द से कटार निकाल उसे देखने लगता है। भीमसिंह और अजीतसिंह उसकी ओर देखते हैं।]

यवनिका

पहला दृश्य

स्थान--राजप्रासाद के 'रावल' में नजर बाग

समय--प्रातःकाल

[पीछे की ओर ऊँची दीवाल दिखायी देती है, जो हरी लताओं से आच्छादित है। दीवाल के समीप फलों के वृक्षों की कतार है। दीवाल

से सामने की ओर तथा दोनों तरफ़ फ़व्वारों की चौपड़ है, जिसमें नजदीक नजदीक अगणित पत्थर के फ़व्वारे हैं। फव्वारे कुंड में हैं। कुण्ड में केशरी रंग भरा है और फ़व्वारों से केशरी रंग ही उड़ रहा है। फ़व्वारे की चौपड़ के चारों ओर उससे लगा हुआ पत्थर की चीपों से पटा मार्ग है। इस मार्ग के बाद क्यारियाँ हैं, जिनमें वसन्त के कारण विविध वर्णों के फूल फूले हुए हैं। मार्ग पर कृष्णकुमारी अपनी कई सखियों के साथ होली खेल रही है। कुण्ड में से पिचकारियाँ भर भर कर रंग चल रहा है और गुलाल उड़ रही है। कृष्णकुमारी की अवस्था लगभग १६ वर्ष की है। वह गौर-वर्ण की ऊँची, किन्तु दुबली-सी अत्यन्त सुन्दर युवती है। यौवन के कारण उसकी सुन्दरता निखर सी गयी है। उसकी सहेलियाँ १४ और २० साल के बीच की हैं। कोई गोरी हैं, कोई गेहुएँ वर्ण की और कोई साँवली; सभी सुन्दर दिख पड़ती हैं। सब घाघरा, काँचली और ऊपर से ओढ़नी धारण किये हुए हैं। वसन्त के कारण सब के वस्त्र वसन्ती रंग *के हैं और चमकते हुए रुपहरी गोटे तथा गोखरू आदि से युक्त। वस्त्रों* पर रंग पड़ने से वे गीले होकर शरीर से चिपट गये हैं। कृष्णकुमारी आभूषणों से भी लदी हुई है। शेप युवतियाँ भी भूषण पहने हैं। गान हो रहा है।]

गान

फागुन नैन नचावत नाचत डोलत लार न छोरत मोरियाँ।
बीन बजाय अबीर उड़ावत गावत आवत गोरियाँ रोरियाँ॥
फाग खिलारि नये भये मोहन नाहि करो अब जोवन जोरियाँ।
रोरियाँ मीड़ि कै रंग में बोरियाँ कान्ह पिछानी मैं चोरियाँ तोरियाँ॥

एक सहेली—बाई साहब, हमारे साथ तो यह अन्तिम होली है।
दूसरी—हाँ, अबकी तो जोधपुर के 'रावल' में होली होगी।
तीसरी—नहीं नहीं, जयपुर के 'हवा महल' में।

चौथी—मैं तो जहाँ भी होऊँगी, साथ चलूँगी, बाई साहब।

कुछ सहेलियाँ—(एक साथ) हम सब...हम सब चलेंगी।

पाँचवीं—क्यों, बाई साहब, हम में से किस किस को ले चलोगी?

[सब एकटक कृष्णकुमारी की ओर देखती हैं। वह कोई उत्तर नहीं देती। कुछ देर निस्तब्धता।]

छठवीं—सासरे की बात पर बाई साहब कभी बोल ही नहीं सकतीं।

सातवीं—अच्छा, यह कहो, बाई साहब, महाराजा मान पसन्द हैं, या राजा जगत?

[फिर सब एकटक कृष्णकुमारी की तरफ़ देखती हैं। वह फिर भी कुछ नहीं बोलती। कुछ देर निस्तब्धता।]

आठवीं—चलो, भैनों, चलें, जब बाई साहब बोलती ही नहीं, तब हमारे यहाँ रहने से लाभ?

कुछ सहेलियाँ—(एक साथ) हाँ, हाँ, चलो चलो।

[सब जाने लगती हैं तब कृष्णकुमारी दौड़कर सब का रास्ता रोकती और खिलखिला कर हँस पड़ती है।]

कृष्णकुमारी—तुम सब मुझे कितना तंग करती हो?

एक—तंग करती हैं!

दूसरी—जब हृदय आनन्द से उल्लसित रहता है तब मुख से निकलता है—तंग, तंग, तंग!

तीसरी—मानो बजता हो होली का चंग चंग चंग!

[सब हँस पड़ती हैं।]

चौथी—विवाह की बात से बाई साहब को इतना हर्ष होता है कि... इतना...इतना हर्ष होता है कि...कि...

कृष्णकुमारी—(गुलाल तीसरी के मुख पर मलते हुए) क्यों, नहीं मानेगी, ऐं!

[कई सहेलियाँ पिचकारी से कृष्णकुमारी पर रंग डालती हैं।]

कृष्णकुमारी--मैं न बोलूँ तो आफ़त, बोलूँ तो आफ़त !

पाँचवीं--**(कृष्णकुमारी पर प्रेमपूर्वक गुलाल फेंकते हुए)** इस बार . . . इस बार तो रंग गुलाल डाल कर मन की निकाल लेने दो, बाई साहब।

कृष्णकुमारी--**(दोनों आँखें हाथों से बन्द करते हुए)** मैं नाहीं करती हूँ ?

सातवीं--अच्छा, यह तो बताओ कि महाराजा मान पसन्द हैं या राजा जगत ?

कृष्णकुमारी--**(लंबी साँस लेकर)** जैसे मैंने किसी को देखा है।

सातवीं--गुण तो सुने हैं। मनुष्य उससे भी प्रेम कर सकता है, जिसे कभी न देखा हो। यथार्थ में सच्चा प्रेम, जो कुछ दिखता है, उससे नहीं, पर जो नहीं दिखता, उससे होता है।

कृष्णकुमारी--जैसे मेरे प्रेम से कुछ होने जाने वाला है ?

छठवीं--क्यों, मुझे विश्वास है दरबार और पटरानीजी जिससे तुम कहोगी, तुम्हारा विवाह कर देंगे।

कृष्णकुमारी--**(गंभीरता से)** पर मैं कहने वाली हूँ कौन, सखि ? अब इस देश में स्वयंवर नहीं होते।

पाँचवीं--स्वयंवर चाहे न होते हों, पर, बाई साहब, आप पर दरबार और पटरानीजी का इतना स्नेह है कि आपका कहना कभी टल सकता है ?

कृष्णकुमारी--**(फिर लंबी साँस लेकर)** राजस्थान के रावलों में पुत्रियाँ नहीं, वे हैं राजस्थान के राजनैतिक शतरंज की प्यादियाँ। तुम सब राजकुमारियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र हो, इसीलिए इस प्रकार हँसी कर रही हो। सखियो ! राजस्थान की कन्याओं के लिए न विवाह हर्ष की बात है, न विवाह के पश्चात् का जीवन। (कुछ रुककर) इतिहास देखो—कितनों का विवाह उनकी इच्छा के अनुसार हुआ है; और कितनी विधर्मियों तक को दे दी गयीं ? विवाह के

पश्चात् भी किस किस को किस किस परिस्थिति का सामना करना पड़ा ? तुम मेरी हँसी उड़ा रही हो, मेरे भाग्य में भी न जाने क्या वदा है ?

आठवीं—पर, वाई साहव, शिशोदियों की कोई राजकुमारी राजपूत के अतिरिक्त किसी को नहीं दी गयी।

नवीं—हाँ, किसका साहस है कि वह उदयपुर के रावल पर दृष्टि...

[एक गोली का प्रवेश। वह आकर कृष्णकुमारी का अभिवादन करती है।]

गोली—वाई साहव, कुँवर ज्वानसिंहजी आपसे मिलने को पधारे हैं।

कृष्णकुमारी—ज्वानसिंहजी! छारंडी के दिन और इतने तड़के ?

गोली—हाँ, वाई साहव, कहलाया है अत्यंत आवश्यक कार्य है।

कृष्णकुमारी—अच्छा, आयी।

[कृष्णकुमारी गोली के साथ जाने लगती है। उसी समय छींक होती है।]

एक सहेली—(कृष्णकुमारी के निकट बढ़कर, उसे रोकते हुए) वाई साहव, छींक हुई है, आप थोड़ी देर ठहर जायँ।

कृष्णकुमारी—(हँसते और जाते हुए) मैं इन सब व्यर्थ की बातों को नहीं मानती।

[नेपथ्य से कुछ शृगालों का शब्द आता है।]

दूसरी सहेली—(आगे बढ़कर) वाई साहव, ठहर जाइए, ठहर जाइए।

कृष्णकुमारी—(ठहरकर) क्यों, हुआ क्या ?

वही सहेली—दिन को सियाल बोल रहे हैं, वाई साहव...

कुछ सहेलियाँ—(एक साथ घवड़ाहट से) हाँ, हाँ, खोटे, वड़े खोटे सगुन हैं।

कृष्णकुमारी—(हँसते और जाते हुए) अरे छोड़ो भी ये बातें।

[कृष्णकुमारी गोली के साथ जाती है । कुछ सहेलियाँ चिन्ताकुल दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखती हैं । [

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—रावल में कृष्णकुमारी का महल

समय—प्रातःकाल

[महल का एक कमरा है । दीवालों और छत पर बादली तैल रंग है, जिस पर यथास्थान रंग बिरंगे बेल बूटे । खिड़कियों में संगमर्मर की जाली है और दरवाजों की चौखटों और किवाड़ों पर खुदाव का काम । छत से बिल्लौर के झाड़ लटक रहे हैं । सुन्दर क़ालीन है । क़ालीन पर सफ़ेद चादर से ढकी हुई गद्दी है, जिस पर सफ़ेद खोली से आच्छादित मसनद लगे हुए हैं । ज्वानसिंह बेचैनी से इधर उधर टहल रहा है । उसका मुख अत्यन्त म्लान और अत्यधिक चिन्ता एवं उद्विग्नता से व्याप्त दिख पड़ता है । इस समय वह जामा न पहन कर सफ़ेद रंग का लंबा अँगरखा पहने हैं । अंगरखे के नीचे धोती दिखती है । सिर पर वसंती रंग की पगड़ी है और कमर में उसी रंग का दुपट्टा, पर दुपट्टे में तलवार या कटार नहीं दिखती । कृष्णकुमारी का प्रवेश । उसने अपने भीगे हुए वस्त्र बदल दिये हैं । ओढ़नी है वसंती, घाघरा लाल, और काँचली हरी । सब वस्त्रों पर गोटे की भरमार है । उसने स्नान भी कर लिये हैं, पर मुख के रंग और गुलाल बिलकुल नहीं छूट पाये हैं । रंग एवं गुलाल की झाँई के कारण उसकी सुन्दरता में और वृद्धि हो गयी है । कृष्णकुमारी की आहट पाकर ज्वानसिंह चौंक सा पड़ता है और कृष्णकुमारी की ओर देखता है ।]

कृष्णकुमारी—(ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) मुझे बुलाया, भाया ?

ज्वानसिंह—(भर्राये हुए स्वर में) हाँ, भैंन, क्षमा करना, तुम्हारे होली के खेल में बाधा पहुँचायी।

कृष्णकुमारी—(गद्दी पर बैठते हुए) नहीं, नहीं, मैं तो नहाने आ ही रही थी। बैठो। कोई आवश्यक काम होगा।

ज्वानसिंह—(गद्दी के एक कोने पर बैठते हुए, गला साफ़ कर, उसी प्रकार के स्वर में) आवश्यक...हाँ, आवश्यक कार्य ही है, (कुछ रुककर) नहीं, नहीं...ऐसा...ऐसा आवश्यक तो नहीं...पर... पर...(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी—(ध्यानपूर्वक ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) आज किस प्रकार बोल रहे हो, भाया ?

ज्वानसिंह—(उसी तरह) किस...किस प्रकार बोल रहा हूँ ? ठीक...ठीक नहीं बोल रहा हूँ, भैंन ?

कृष्णकुमारी—(और भी ध्यानपूर्वक ज्वानसिंह की ओर देखते हुए, कुछ आश्चर्य से) ठीक ? ठीक क्या, मैंने इस तरह कभी तुम्हें बोलते हुए सुना ही नहीं; न ऐसे स्वर में, न इस मुद्रा से।

ज्वानसिंह—(बहुत देर तक गला साफ़ करते तथा बगलें झाँकते हुए)...ऐं!...ऐसा...ऐसा...(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी—(आश्चर्य और चिन्ताकुल स्वर में) भाया, क्या ...क्या बात है ? मुझे तो चिन्ता-सी होने लगी।

ज्वानसिंह—(जल्दी से) कुछ नहीं...कुछ नहीं, भैंन। मैं समझता हूँ मेवाड़ पर जो आपत्ति आ रही है उसी का कदाचित् मुझ पर भी प्रभाव होगा।

कृष्णकुमारी—(अत्यंत आश्चर्य और अत्यधिक चिन्ता से) मेवाड़ पर आपत्ति ! कोई नयी बात हुई है ?

ज्वानसिंह—(फिर गला साफ़ करते हुए) नयी...नयी बात तो ऐसी कुछ नहीं, पर एक पुरानी...पुरानी बात ने ही नया रूप धारण कर लिया है।

कृष्णकुमारी—(उत्सुकता से) किस बात ने, भाया ?

ज्वानसिंह—क्या...क्या करोगी तुम उसे सुनकर, भैन ?

कृष्णकुमारी—क्यों, क्या मैं मेवाड़ की नहीं हूँ ?........ इसी पृथ्वी से मेरा शरीर नहीं बना है ? इसी के वायु मंडल में नहीं पला है ?

ज्वानसिंह—यह तो ठीक है, भैन, परन्तु...परन्तु...

कृष्णकुमारी—किन्तु परन्तु कुछ नहीं, भाया। मुझे भी मेवाड़ की आपत्ति जानने का अधिकार है।

ज्वानसिंह—(उठकर इधर उधर टहलते हुए) अधिकार... अधिकार...तो...अधिकार तो...(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी—(उठकर, ज्वानसिंह का हाथ पकड़, उसे बैठा, उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए) भाया, तुम्हारी तो विचित्र...विचित्र दशा है। आज पर्यन्त मैंने तुम्हें कभी भी ऐसी हालत में नहीं देखा।

ज्वानसिंह—(गला साफ कर बगलें झाँकते हुए) ऐसा...ऐसा...

कृष्णकुमारी—है क्या, भाया ? मुझे होली खेलते में से बुलाया, कहलाया—आवश्यक काम है। जब आयी और काम पूछा तब पहले बोले—'हाँ आवश्यक कार्य ही है।' फिर उसी साँस में बोल उठे—'ऐसा...ऐसा आवश्यक तो नहीं।' चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं, स्वर भर्रा रहा है। कारण पूछा तो बोले—'मेवाड़ पर जो आपत्ति आ रही है कदाचित् उसी का प्रभाव होगा' आपत्ति पूछती हूँ तो बताते नहीं। निरर्थक शब्दों को दुहराते हो—'किन्तु किन्तु' 'परन्तु...परन्तु' 'ऐसा...ऐसा' है क्या, भाया, है क्या ? अब तो मेरा कलेजा भी मुँह को आ रहा है। मेरा चित्त भी अत्यंत अस्थिर हो उठा है।

ज्वानसिंह--(कुछ सँभलकर, लंबी साँस ले) भैन, आपत्तियों को पुरुष ही सहन कर लें तो अच्छा है; स्त्रियों तक वे बातें न पहुँचने देना ही पुरुषों का कर्तव्य होना चाहिए।

कृष्णकुमारी--व्यर्थ की बातें न करो, भाया, जीवन रथ के स्त्री और पुरुष दोनों चक्र हैं; मेवाड़ ने तो सदा यही माना है। जब जब देश पर आपत्ति आई है उसके निवारण का, उसके लिए बलिदान का, दोनों ने समान रूप से प्रयत्न किया है।

[ज्वानसिंह कोई उत्तर न देकर, सिर झुका, विचारमग्न-सा हो जाता है। कृष्णकुमारी एकटक उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णकुमारी--(एकाएक) भाया, तुम्हें सौगन्ध है मेरी, यदि तुम सब बातें स्पष्ट रूप से मुझे न बताओगे।

ज्वानसिंह--(धीरे धीरे सिर उठाकर, लंबी साँस ले) भैन, तुम सौगन्ध दिला रही हो, क्या कहूँ? तुम्हारे दिन हैं--खेलने, हँसने के। जीवन के यथार्थ आरंभ के समय, जीवन के वसंत के बीच, जीवन की समाप्ति का संवाद, जीवन के पतझड़ का संवाद, सुनने की अपेक्षा सुनाना कदाचित् कहीं कठिन कार्य है। भैन, मैंने तुम्हें पालने में अपने अंगों को हिलाते, रोते और मुस्कराते देखा है। तुम्हें गोद में खिलाया है और तुम्हारे साथ खेला भी हूँ। तुम्हें पढ़ाया और तुम्हारे साथ पढ़ा भी हूँ। प्रेमी के हृदय में प्रेमिका के सौंदर्य को देख यदि उमंगे उठती हैं, तो भाई को भैन का सौंदर्य देख उल्लास उठता है। प्रेमी की दृष्टि में यदि वर्षा-ऋतु का मद रहता है, तो भाई की दृष्टि में शरद की स्वच्छता। भैन, तुम मेरी ही नहीं, रावल की ही नहीं, सारे राज-कुल की, सारे राजप्रासाद की स्फूर्ति हो, स्नेह-प्रतिमा हो। (कुछ रुककर) क्या...क्या कहूँ तुमसे, इस आपत्ति का कारण तुम्हें सुनाने का मेरा साहस नहीं होता। (सिर झुका लेता है।)

कृष्णकुमारी--(एकटक ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) क्यों, क्या मैं अबला हूँ, इसलिए ? पर तुम्हें समझना चाहिए कि राजपूतनियाँ अबला नहीं सबला हुआ करती हैं।

ज्वानसिंह--(सिर उठाकर) नहीं नहीं... सलिए...इसलिए नहीं, भैन, पर...पर...(फिर सिर झुका लेता है)।

कृष्णकुमारी--(सोचते हुए) तब...तब क्या इसलिए कि आपत्ति का मैं कारण हूँ, भाया ?

[ज्वानसिंह सिर उठाकर कृष्णकुमारी की ओर केवल देखता है, पर कुछ बोलता नहीं।]

कृष्णकुमारी--(ज्वानसिंह की ओर देखते हुए, कुछ देर बाद) समझी, मैं ही आपत्ति का कारण हूँ। (कुछ रुककर) मेरे विवाह के संबंध में जो झगड़ा उठा हुआ है, उसने कोई उग्र रूप धारण किया होगा ?

[ज्वानसिंह चुपचाप कृष्णकुमारी की ओर देखता रहता है, कुछ बोलता नहीं। कृष्णकुमारी सिर झुका कर कुछ सोचने लगती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

कृष्णकुमारी--(एकाएक जोश भरे स्वर में सिर उठाकर) भाया, मैं क्षत्राणी हूँ, सुना, सच्ची राजपूतनी। क्षत्राणियों की वीर-गाथाएँ पहले पहल तुम्हीं ने मुझे सुनाना आरंभ किया था। फिर...फिर तो वे मेरे भजन...हाँ, भजन की सामग्री हो गयीं। जिन वीर माताओं, जिन वीर पत्नियों, जिन वीर पुत्रियों ने अपने कुल, अपनी जाति, अपने देश, अपने धर्म के लिए सहर्ष उत्साह और उमंग से कष्ट सहन किये हैं, अपने प्यारे प्राण दिये हैं, वन-वन भटकी हैं, और अग्नि की तप्त ज्वालाओं को भी शीतल हिम के सदृश आलिंगन किया है, उनके जीवन, उनके जीवनों के दृश्य मेरे सामने घूमते रहते हैं। अनेक बार मैं उनके स्वप्न देखती हूँ। उनके प्रति पूज्य...परम पूज्य भावनाएँ रहते हुए भी मेरे हृदय में उनके प्रति अनेक बार डाह सी उत्पन्न होती है।

मेरे मन में उठता है—मुझे. . .मुझे भी कभी ऐसा अवसर प्राप्त हो सकता है जब मैं अपने जीवन को अपने कुल, अपनी जाति, अपने धर्म, अपने देश के लिए उत्सर्ग कर सकूँ। (कुछ रुककर) भाया, यदि मैं आपत्ति का कारण हूँ, मेरे किसी भी प्रकार के त्याग, अरे शरीर तक के अर्पण से यदि वह आपत्ति दूर हो सकती हो तो कहो. . .कहो, भाया, वह. . .वह संवाद तो मेरे लिए दुःख नहीं, हर्ष का, खेद नहीं, उल्लास का विषय होगा।

ज्वानसिंह—(गद्‌गद्‌ स्वर में) धन्य. . .धन्य है, भैन, धन्य तुम्हें। तुम सच्ची वीर बाला हो, तुम सच्ची क्षत्राणी हो, सच्ची राजपूतनी। (कुछ रुककर) भैन, तुम्हारे विवाह के झगड़े ने ही उग्र रूप धारण किया है। महाराजा मान और राजा जगत की ही तुम्हारी माँग नहीं है, एक नयी महान्‌ समस्या और उपस्थित हो गयी है।

कृष्णकुमारी—कैसी ?

ज्वानसिंह—सींधिया ने तुमसे विवाह करने का प्रस्ताव किया है।

कृष्णकुमारी—ऐसा ?

ज्वानसिंह—हाँ, उसने दरबार के सामने रखा है कि या तो वे राठौरों, मराठों, और अंग्रेज़ों, सबसे युद्ध करें, या तुम्हारा विवाह उससे करें।

कृष्णकुमारी—और दरबार ने क्या कहा ?

ज्वानसिंह—एक शूद्र के साथ दरबार तुम्हारे विवाह की कल्पना तक नहीं कर सकते।

कृष्णकुमारी—(कुछ रुककर) फिर क्या. . .क्या उपाय सोचा है, भाया, पिताजी युद्ध करेंगे ?

ज्वानसिंह—(सहमे हुए स्वर में) युद्ध ! युद्ध, भैन ? मेवाड़ एक ओर राठौरों और कछवाहों, दूसरी ओर मराठों, तीसरी ओर अंग्रेज़ों और चौथी ओर मुसलमानों, सबसे युद्ध करने में समर्थ नहीं है।

कृष्णकुमारी—तो सबने मेवाड़ के विरोध में बीड़ा उठाया है ?

ज्वानसिंह—हाँ, आज मेवाड़ सर्वथा अकेला है।

कृष्णकुमारी—फिर ?

ज्वानसिंह—(भर्राये हुए स्वर में) क्या...क्या कहूँ, भैन।

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है। एकाएक ज्वानसिंह के अँगरखे के नीचे से कटार पृथ्वी पर गिर पड़ती है।]

कृष्णकुमारी—(कटार देखकर) हैं, यह कटार तुमने कमरबन्द में न बाँध अँगरखे के नीचे रखी थी ?

ज्वानसिंह—(जल्दी भर्राये हुए स्वर में) हाँ...हाँ...नहीं...नहीं...वह...वह तो...(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी—(कटार उठाकर) भाया, यह कटार तुम छिपाकर किस लिये लाए थे ?

[ज्वानसिंह उठकर इधर उधर टहलता है, पर बोलता कुछ नहीं।]

कृष्णकुमारी—(ज्वानसिंह के सामने जाकर खड़े हो) भाया !

[ज्वानसिंह रो पड़ता है। कुछ देर निस्तब्धता। एकाएक ज्वानसिंह का प्रस्थान।]

कृष्णकुमारी—(ज्वानसिंह के पीछे पीछे जाते हुए) भाया ! भाया !

[ज्वानसिंह नहीं लौटता। कृष्णकुमारी एकटक कटार की ओर देखती है।]

लघु-यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—रावल में पटरानी का महल

समय—प्रातःकाल

[महल का एक कमरा है, प्रायः वैसा ही जैसा कृष्णकुमारी का था, किन्तु दीवालों और छत का रंग उस कमरे से भिन्न है। इन पर गुलाबी

तैल का रंग है और उस पर रंग बिरंगे बेल बूटे। क़ालीन भी गुलाबी जमीन का है और उस पर विविध रंग की बेलें और बूटें हैं। कृष्णकुमारी का प्रवेश। उसकी वेष-भूषा दूसरे दृश्य के सदृश ही है; इतना ही अन्तर है कि कमर में ज्वानसिंह की कटार खुसी हुई है।]

कृष्णकुमारी—(जोर से) माँ! माँ!

नेपथ्य से—आयी, बाई।

[पटरानी का प्रवेश। उसकी अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है। वह गौरवर्ण की ऊँची पूरी और भरे हुए शरीर की सुन्दर स्त्री है। बैंगनी रंग का घाघरा, लाल रंग की काँचली और बसंती रंग की ओढ़नी धारण किये है। सब कपड़ों पर गोटा लगा हुआ है। रत्न-जटित आभूषणों से उसके अंग प्रत्यंग जगमगा रहे हैं।]

पटरानी—(निकट आ) खेल हो गया, बेटी?

कृष्णकुमारी—हाँ, माँ, अभी स्नान करके ही आ रही हूँ।

पटरानी—आज जल्दी हो गया खेल?

कृष्णकुमारी—बहुत जल्दी तो नहीं, माँ।

पटरानी—सब भाई बेटों के यहाँ से बाइयाँ और बींदनियाँ, तेरी सब सहेलियाँ, आयी थीं?

कृष्णकुमारी—प्रायः सभी आयी थीं, माँ।

पटरानी—(कृष्णकुमारी का मुख ध्यान से देखते हुए) और किस प्रकार नहायी है तू? रंग-गुलाल तक अच्छी तरह मुख से नहीं छूटे।

कृष्णकुमारी—ज्वान आ गये थे, माँ, इसलिए जल्दी जल्दी नहायी।

पटरानी—अच्छा, इतने तड़के? वह कहीं होली खेलने नहीं गया?

कृष्णकुमारी—उन्हें मुझसे कुछ आवश्यक कार्य था, माँ।

पटरानी—(कुछ आश्चर्य से) उसे तुझसे आवश्यक काम था?

कृष्णकुमारी—हाँ, माँ, (कटार की ओर संकेत कर) देखती नहीं हो यह कटार?

पटरानी—(**कटार को देखकर**) यह कटार तू क्यों लगाकर आयी है ?

कृष्णकुमारी—यह मेरी कटार नहीं है, माँ।

पटरानी—तब ?

कृष्णकुमारी—यह ज्वान की कटार है।

पटरानी—(**आश्चर्य से**) ज्वान को तुझसे आवश्यक कार्य था, यह ज्वान की कटार है, और इसे तू लगाकर आयी है, मेरी समझ में कुछ नहीं आया।

कृष्णकुमारी—(**लंबी साँस लेकर**) बैठ जाओ, माँ, तो सब हाल कहूँ; लंबी, बड़ी लंबी कहानी है।

[दोनों गद्दी पर बैठ जाती हैं। कुछ देर निस्तब्धता। पटरानी एकटक कृष्णकुमारी की ओर देखती है और कृष्णकुमारी कुछ देर सोचती।]

कृष्णकुमारी—क्यों, माँ, पुरुष के चाहे जितने विवाह हों पर स्त्री का तो एक ही विवाह हो सकता है न ?

पटरानी—इसमें भी कोई सन्देह है ?

कृष्णकुमारी—और पुरुष के विवाह के संबंध में स्त्रियाँ चाहे न लड़ें पर स्त्री के विवाह के संबंध में पुरुष प्रायः क्यों लड़ते हैं ?

पटरानी—इसलिए कि वे स्त्री को निर्जीव नहीं तो एक जीवित पदार्थ मानते हैं। वे समझते हैं जिस प्रकार राज्य, धन, संपत्ति इत्यादि पर मालकियत प्राप्त करने का उन्हें नैसर्गिक अधिकार है, उसी प्रकार स्त्री पर भी।

कृष्णकुमारी—(**गंभीरता से**) ऐसा...ऐसा माँ ? (**चुप हो जाती है।**)

पटरानी—पर यह तो बता इस सबसे ज्वान के तेरे पास आने और इस कटार से क्या संबंध है ?

कृष्णकुमारी—माँ, मेरे पाणि-ग्रहण की माँग अब केवल जयपुर और जोधपुर में ही केन्द्रित नहीं है, वह और आगे बढ़ी है।

पटरानी—(आश्चर्य से) अच्छा !

कृष्णकुमारी—श्रीमन्त सींधियाजी मुझसे विवाह करना चाहते हैं।

पटरानी—ऐसा ?

कृष्णकुमारी—हाँ, उन्होंने भाईजी से कहा है कि या तो वे उनसे मेरा विवाह कर दें, या मेवाड़ पर केवल जोधपुर का ही नहीं पर मराठों तथा अंग्रेज़ों का भी आक्रमण होगा।

पटरानी—और दरवार ने क्या कहा ?

कृष्णकुमारी—दरवार शूद्र से मेरे विवाह की कल्पना तक नहीं कर सकते।

[पटरानी का सिर झुक जाता है। वह कुछ देर कुछ नहीं वोलती। कृष्णकुमारी एकटक उसकी ओर देखती है।]

पटरानी—(एकाएक सिर उठा कर) ऐसा ? तो फिर...फिर एक वार मेवाड़ में रण-चंडी जागेगी।...एक वार...एक वार फिर सारे भारत की शक्तियाँ एक ओर से और मेवाड़ अकेला दूसरी ओर से संग्राम करेगा। वप्पा रावल और साँगा, परताप और राजसिंह की सन्तति, मेवाड़ के सोलहों क्षत्रिय घरानों के सरदार और उनके अनुयायियों को, भीलों को साथ ले, इन शत्रुओं से संग्राम करने का अवसर प्राप्त होगा। फिर से चारण जन समुदाय को जगावेंगे। शंख तथा भेरी वजेंगे। जन समुदाय उठ उठ कर योद्धाओं के रूप में मेवाड़ के लाल झंडे के नीचे एकत्रित हो, युद्ध कर, अपना और शत्रुओं का रक्त वहा, उस रक्त की रण-चंडी की वेदी में आहुति डालेंगे। जीत हुई तो हम नारियाँ इन वीरों का अपूर्व स्वागत करेंगी और हार हुई तो जौहर कर सीधे, हाँ, सीधे स्वर्ग को जायँगी। (कुछ रुककर) पर...पर...वाई, इस... इस सवसे ज्वानसिंह के तेरे पास आने और...और...(कटार की ओर देखते हुए) इस...इस कटार से क्या संवंध है ?

कृष्णकुमारी—यह, माँ, कि यह...यह सारा रक्त-पात...रक्त-पात

बच जावे। एक...एक मेरी ही आहुति दे, रण-चंडी की अग्नि को मेरे रक्त से शान्त कर दिया जाय।

पटरानी—(**चिल्लाकर**) तेरी...तेरी हत्या की जाय?

कृष्णकुमारी—हत्या नहीं, माँ, बलिदान; और...और उचित ...बलिदान। हमारे प्राचीन शास्त्रों तक का मत है कि एक के बलिदान से यदि कुल की रक्षा होती हो तो उसका बलिदान ही उचित बात है। यहाँ तो मेरे बलिदान से केवल कुल की ही नहीं, पर सारी प्रजा और देश की रक्षा होती है। (**कुछ रुककर**) माँ...माँ...मैंने बाल्यावस्था से मेवाड़ की वीर-बालाओं के इतिहास पढ़े हैं। उनकी कथाओं को पढ़-पढ़ कर मेरा हृदय न जाने कितनी बार बीतों और हाथों उछला है। मेरे सारे शरीर की रोमावली शल्यों और बाणों के सदृश सीधी और तीखी खड़ी हुई है। मुझे...मुझे भी क्या जीवन में वैसे बलिदान का अवसर मिलेगा—यह सोच सोच कर न जाने कितनी...कितनी बार मेरे मस्तिष्क में विचारों की चक्कियाँ चली हैं। (**गद्‌गद् स्वर से**) माँ... माँ, मुझे...मुझे जीवन का वह अपूर्व अवसर मिल गया। तुम्हारी कोख मैं पवित्र कर सकूँगी। जन्मभूमि के गौरव की मुझसे वृद्धि होगी और एक...एक मेरे रक्त बह जाने पर मेवाड़ के अगणित निवासियों की रक्षा हो जायगी। यह...यह बलिदान तो...

पटरानी—क्या...क्या कहती है, बेटी, यह...यह बलिदान नहीं, हत्या...घृणित हत्या है; और पुरुष वर्ग की स्त्री की हत्या करके अपने बचाव की कुत्सित चेष्टा।

कृष्णकुमारी—पर...पर, माँ, स्त्री तो मिटने के लिए ही बनी है, चाहे वह हत्या से मिटायी जाय या स्वयं अपना बलिदान करे।

पटरानी—किन्तु, बेटी, स्त्रियों की ऐसी हत्या, उनके ऐसे बलिदान पर मेरा विश्वास नहीं। मैं नहीं मानती कि स्त्री मिटने के लिए ही बनी है। इस संसार में जितना अधिकार पुरुष को जीवित रहने का

है, उतना ही स्त्री को। जितने आनन्द भोगने का पुरुष अधिकारी है, उतनी ही स्त्री। अब तक पुरुषों ने स्त्रियों पर राज्य, धन, संपत्ति के सदृश अपनी मालकियत रखने का प्रयत्न किया है, उन्हें अपनी क्रीड़ा के लिए खिलौना माना है। स्त्री अपनी इस परिस्थिति में परिवर्तन करेगी। यदि उसे पुरुष ने सब बातों में समान अधिकार नहीं दिया तो वह विप्लव करेगी और फिर तो वह स्वयं पुरुष का स्थान प्राप्त कर उन्हें अपनी जगह देगी।

कृष्णकुमारी—किन्तु, माँ, इस समय मेवाड़ पर जो आपत्ति आयी है, उसमें पुरुष और स्त्री का प्रश्न नहीं है, वह तो दोनों ही वर्गों पर समान रूप से आयी है।

पटरानी—पर उसमें पुरुष वर्ग एक स्त्री की हत्या करके बचना जो चाहता है। समान रूप से आयी हुई आपत्ति का हम समान रूप से सामना करने के लिए तैयार हैं। पुरुष केसरिया बाना पहन कर युद्ध को निकलें। हमें उन्होंने युद्ध करना सिखाया होता, तो हम भी उनके साथ निकलतीं। हम उसमें असमर्थ हैं, पर मरने में नहीं। उनकी हार पर हम जीवित न रहेंगी। मेवाड़ में कभी ऐसा हुआ भी नहीं। जब उनके रण-भूमि में बलिदान का समय उपस्थित होगा तब हम रावल में जौहर करेंगी। जितने साहस, जितने उत्साह, जितनी उमंग, जितने आनन्द से वे अपने सिरों की आहुति रण-चंडी की वेदी में चढ़ायँगे, उससे भी अधिक साहस, उससे भी अधिक उत्साह, उससे भी अधिक उमंग, उससे भी अधिक आनन्द से हम अपने सारे शरीरों का उस प्रबल अग्नि में हवन कर देंगी, किन्तु...किन्तु, बेटी, तेरी...तेरी इस प्रकार की हत्या...ठंडी हत्या मुझे स्वीकार नहीं।...बाई, मैं यह सोच ही नहीं सकती—ऐसी अधम...ऐसी निकृष्ट बात, ऐसी...ऐसी कुत्सित कल्पना—मेरे हृदय में नहीं उठ सकती। (कुछ रुककर) क्या...क्या ज्वानसिंह इस कटार से तेरी हत्या करने के लिए तेरे पास आया था?

कृष्णकुमारी—सो...सो तो मैं नहीं कह सकती, माँ, किन्तु... किन्तु...

[भीमसिंह का प्रवेश। भीमसिंह इस समय न जामा पहने हैं, न मंदील बाँधे हैं। लंबा अँगरखा, धोती और केसरी रंग की पगड़ी धारण किये हैं। उसका मुख एकदम उतरा हुआ है।]

भीमसिंह—(आगे बढ़ते हुए, भर्राये हुए स्वर में) ज्वान, मेरी... मेरी अनुमति से हत्यारा बनकर आया था...मेरे ...मेरे कहने से उस कटार को लाया था। अधम पिता—हत्यारे पिता ने अपनी पुत्री का रक्त चूसने उसे रावल में...छारंडी के दिन...एक त्योहार के दिवस भेजा था...आह!

[पटरानी और कृष्णकुमारी दोनों भीमसिंह का शब्द सुनते ही खड़ी हो गयी थीं। कृष्णकुमारी दौड़कर भीमसिंह के गले से लिपट जाती है। पटरानी एकटक दोनों की ओर देखती है। उसकी दृष्टि में क्रोध से युक्त महान् शोक दिखायी पड़ता है। भीमसिंह के नेत्रों से आँसू बहते हैं। वह अपने हाथ कृष्णकुमारी की पीठ पर फेरता है।]

कृष्णकुमारी—भाईजी ... भाईजी ... आप ... आप अपने को अधम, अपने को हत्यारा यह सब क्या...क्या कह रहे हैं?

भीमसिंह—(और भी भर्राए हुए स्वर में) और क्या कहूँ, बेटी? शिशोदिया कुल के किस कुल-कलंक ने अपनी पाली पोसी विवाह, योग्य की हुई कन्या के वध का ऐसा षड्यंत्र...

कृष्णकुमारी—(बीच ही में) भाईजी...ऐसी...ऐसी बातें मुख से न निकालिए। आपने कोई षड्यन्त्र नहीं किया। मेरी हत्या का नहीं, मेरे बलिदान, और बलिदान ही नहीं, कल्याण का यह आयोजन है, और उचित आयोजन, भाईजी। आप मेरा विवाह किसी एक ही व्यक्ति से तो कर सकते थे। उसकी प्रसन्नता न जाने कितनों की अप्रसन्नता का कारण होती। एक मेरे कारण मेवाड़ पर कदाचित्

अभूतपूर्व आपत्ति आती। इस परिस्थिति में आपने जो निर्णय किया है, उससे अच्छा निर्णय संभव ही न था।...आप देश की रक्षा, प्रजा की रक्षा के यज्ञ में अपनी सबसे प्रिय वस्तु का बलिदान कर रहे हैं, हत्या नहीं। अधम नहीं, आप महान् हैं, पिता जी।

पटरानी—**(क्रोध से)** बेटी...बेटी, यह बलिदान नहीं, हत्या, सीधी सादी, घृणित और कुत्सित हत्या है, अपनी पुत्री की ऐसी हत्या!

कृष्णकुमारी—**(फिर बीच ही में)** माँ, तुम नहीं समझ रही हो, नहीं समझ रही हो। यह पुत्री की हत्या नहीं, यह है समष्टि के लिए व्यष्टि का बलिदान।

पटरानी—यह है पुरुषों का अपने बचाव के लिए स्त्री का संहार। महान् कहे जाने वाले पुरुषों का अपने जीवन के लिए अपनी जीवित संपत्ति का...

कृष्णकुमारी—**(फिर बीच ही में)** मैंने कहा था, फिर कहती हूँ, यहाँ पुरुष और स्त्री का प्रश्न ही नहीं है, और यदि हो भी तो महान् तो वही है, जिसका बलिदान होता है, या जो बलिदान करता है। **(भीमसिंह से)** आपने ज्वान को इस प्रकार निरर्थक भेजा, मुझे बुला लेते। मैं अबला नहीं सबला राजपूतनी हूँ। आपका रक्त, राजसिंह और परताप का रक्त, साँगा और कुंभा का रक्त, हम्मीर और बप्पा रावल का रक्त, मेरी नाड़ियों में भी बह रहा है। देश के लिए, प्रजा के लिए, मैं इन प्राणों के बलिदान का साहस रखती हूँ। अपने धर्म की रक्षा के लिए मैं शरीर को तुच्छ से तुच्छ वस्तु मानती हूँ। आप मुझे बुला लेते। आपकी आज्ञा पाते ही तत्क्षण मैं मृत्यु का आलिंगन करती। तैयार हूँ, भाईजी, तैयार हूँ मैं, धर्म के लिए, देश के लिए, कुल के लिए, आपके लिए इन प्राणों को उत्सर्ग करने के लिए।

भीमसिंह—**(आँसू बहाते, उसी प्रकार के भर्राए हुए स्वर से, लिपटी हुई कृष्णकुमारी की पीठ पर हाथ फेरते हुए)** बेटी...बेटी...

पटरानी—आह ! आह !

[पटरानी मूर्च्छित होकर गिरती है। भीमसिंह और कृष्णकुमारी दोनों दौड़कर उसे सँभालते हैं ।]

लघु-यवनिका

चौथा दृश्य

स्थान—कृष्णकुमारी का महल

समय—मध्याह्न

[कृष्णकुमारी गद्दी पर बैठी हुई अपने सामने रखी हुई कटार की ओर देख रही है। पटरानी उसी के निकट बैठी कृष्णकुमारी की ओर देख रही है। कृष्णकुमारी की दृष्टि में एक प्रकार की शून्यता और पटरानी की मुद्रा में अत्यधिक उद्विग्नता है ।]

कृष्णकुमारी—(कुछ देर बाद, एकाएक सिर उठाकर, पटरानी की ओर देखते हुए) तो, माँ,...ऐसे...ऐसे महान् कार्य के लिए आत्म-बलिदान करने पर भी मुझे आत्महत्या का पाप लगेगा ?

पटरानी—आत्म-हत्या, आत्म-हत्या ही है, बाई, चाहे वह किसी काम के लिए भी क्यों न की जाय।

कृष्णकुमारी—और जौहर में जो आत्म-हत्याएँ की जाती हैं ?

पटरानी—(कुछ विचारते हुए) वे...वे आत्म-हत्या नहीं। जौहर स्त्रियों की स्वीकृत रण-भूमि है।

कृष्णकुमारी—और पति के साथ चिता में सती होना ?

पटरानी—वह...वह भी धर्म द्वारा स्वीकृत मृत्यु है, वह (कटार की ओर देखकर) इस..इस कटार..कटार से..(चुप हो जाती है।)

[कुछ देर निस्तब्धता। कृष्णकुमारी फिर उसी प्रकार की दृष्टि से कटार की ओर और पटरानी वैसी ही मुद्रा से कृष्णकुमारी की तरफ देखने लगती है।]

कृष्णकुमारी—परन्तु, माँ, मैं नहीं मानती कि मेरा स्वयं अपने हाथ से निधन आत्म-हत्या है; यह है आत्म-बलिदान। समष्टि के लिए व्यष्टि का आत्म-समर्पण। जौहर और सती होना यदि बलिदान हैं, हत्या नहीं, तो यह भी वही है, चाहे पद्धति में भिन्नता हो। किसी प्रकार के आवेश में आकर, या दुख से बचने के लिए, मैं अपना निधन नहीं कर रही हूँ; मैं यह कर रही हूँ कुल, जाति, समाज और देश की रक्षा के लिए। फिर यह पाप कैसे हो सकता है, यह हत्या क्यों कर हो सकती है? यह पुण्य है, पुण्य। यह बलिदान है, महान् बलिदान।

पटरानी—मैं यह नहीं मानती, बाई, मैं तुझसे सहमत नहीं। (कुछ रुककर) यदि मरना..मरना ही है तो जा, कह अपने पिता से, वे किसी जल्लाद को बुला देंगे; आत्म-हत्या के पाप से तो बच जायगी।

कृष्णकुमारी—माँ, तुम भाईजी को वृथा दोष लगा रही हो; सारी परिस्थिति को जान लेने के पश्चात् भी तुम्हारा...

पटरानी—(बीच ही में) जान ली...जान ली सारी परिस्थिति। अपने बचाव के लिए का-पुरुषों का यह घृणित आयोजन, कायर बाप का बेटी की हत्या का यह षड्यंत्र...

कृष्णकुमारी—षड्यन्त्र क्यों, माँ, जब भाईजी स्वयं स्वीकार कर गये कि ज्वान को उन्होंने भेजा था, तब यह षड्यंत्र कहाँ रह गया? और पुरुषों के बचाव का प्रश्न ही कहाँ है? यह है एक व्यष्टि के बलिदान से समष्टि के बचाव का सवाल, जिसमें पुरुष, स्त्रियाँ, बालक, सभी हैं। माँ, तुम क्षत्राणी हो, राजपूतनी हो, तुम मृत्यु से क्यों डरती हो?

पटरानी—(आश्चर्य से) मैं मृत्यु से डरती हूँ?

कृष्णकुमारी—और नहीं तो यह क्या है?

पटरानी—मैं मृत्यु से नहीं डरती, बाई, राजपूतनी के लिए मृत्यु भय की वस्तु नहीं, परन्तु मैं या तो वीरोचित मृत्यु चाहती हूँ, या स्वाभाविक मृत्यु। यदि पुरुष केसरिया बाना पहन युद्ध के लिए निकलें और युद्ध-भूमि में अपना बलिदान कर दें, तो मैं जौहर कर मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हूँ। जिस दिन काल आजाय उस दिन भी मैं मृत्यु के हाथ अपने को सौंपने को प्रस्तुत हूँ, परन्तु...परन्तु तेरी मृत्यु के लिए जैसी रचना रची गयी है, उसे देखते हुए, यह न वीरोचित मृत्यु है और न स्वाभाविक।

कृष्णकुमारी—यह इन दोनों प्रकार की मृत्युओं से महान् मृत्यु है, यह है समष्टि के लाभ के लिए व्यष्टि की मृत्यु। यह...यह...

[अजीतसिंह का प्रवेश।]

पटरानी—**(अजीतसिंह की ओर देखकर)** ओह, अजित! **(कुछ रुककर)** कहो, अजित, अब तुम कौन सा संवाद लाये हो?

अजीतसिंह—**(क़ालीन पर बैठते हुए)** मैं...मैं, पटरानीजी?

पटरानी—हाँ, क्यों यों ही मेवाड़ में छारंडी का दिन नये संवादों का दिन होता है, और **(लंबी साँस लेकर)** इस साल छारंडी का दिन तो... **(गला भर आने के कारण चुप हो जाती है।)**

कृष्णकुमारी—**(पटरानी से)** नहीं, माँ, अजित संवाद लेकर नहीं, संवाद ले जाने के लिए आये हैं। **(अजीतसिंह से)** ठाकुराँ, आपको कृष्णा न मिलकर कृष्णा की लाश ही मिलती, परन्तु प्रश्न उठ गया है आत्म-हत्या के पाप का। **(कटार उठाकर)** आप इसे मेरी छाती में भोंक दीजिए।

अजीतसिंह—आपकी वीरता को धन्य है, राजकुमारीजी, और वीर-कर्म के कारण महान् पुण्य प्राप्त कर आप उच्चतम लोक को जायँगी। परन्तु जब मैंने सारा वृत्त सुना तब आपकी इस यात्रा के लिए इस क्रूर कटार की जगह दूसरा मृदु मार्ग सोचा है। परिस्थिति के कारण

आपको यह लोक छोड़ना ही होगा, पर न आत्म-हत्या की आवश्यकता है और न अन्य किसी को इस कटार के उपयोग की।

कृष्णकुमारी—तब ?

अजीतसिंह—राजकुमारीजी, मैं भी भावुक व्यक्ति हूँ, परन्तु परि-स्थिति के अनुसार क्रूर से क्रूर कर्तव्य करने के लिए मैं अपने को किसी प्रकार तैयार कर लेता हूँ।

कृष्णकुमारी—क्यों नहीं, आप राजपूत हैं, सच्चे क्षत्रिय हैं।

अजीतसिंह—मैंने आपके विष-पान की व्यवस्था की है, राजकुमारी।

कृष्णकुमारी—**(प्रसन्नता से)** ठीक, इससे अच्छा उपाय सोचा नहीं जा सकता था। आप शीघ्र मनवार-प्याला लायें, ठाकुराँ। मैं इस समय की स्थिति का शीघ्र से शीघ्र अन्त कर देना चाहती हूँ।

अजीतसिंह—**(लंबी साँस लेकर)** राजकुमारीजी, इस कठोर, इस क्रूरतम कार्य करने के लिए मैंने अपने हृदय को, अपने मस्तिष्क को, किस प्रकार तैयार किया है, यह मैं आपको और पटरानीजी को शब्दों में नहीं बता सकता, पर...पर कर्तव्य...क्रूर से क्रूर कर्तव्य भी पालन करना ही पड़ता है। कुल, जाति, समाज, और देश के लिए इस समय आपको बलिदान करना और हमें उसमें सहायता देना ही होगा।

कृष्णकुमारी—मैं सब समझती हुँ, ठाकुराँ, आप शीघ्र ही प्याला लावें। मैं जानती हूँ कि कर्तव्य कैसा ही क्यों न हो, पूर्ण होने पर वह संतोष का ही कारण होता है।

[अजीतसिंह धीरे-धीरे उठकर जाता है। पटरानी रो पड़ती है।]

कृष्णकुमारी—माँ, माँ, कितना...कितना समझाऊँ तुम्हें। तुम्हारा स्नेह तो मोह में परिणत हो गया है। **(जब पटरानी के आँसू नहीं रुकते तब अपनी ओढ़नी के छोर से आँसू पोछते हुए)** क्यों, माँ, मृत्यु को मुझे सुख और उत्साह के साथ आलिंगन न करने दोगी ?

[कुछ देर निस्तब्धता। अजीतसिंह का स्वर्ण के रत्न-जटित प्याले में विष लिये हुए प्रवेश।]

पटरानी—(अजीतसिंह को देखकर, रोते-रोते भर्राए हुए स्वर में) अजित...अजित...

कृष्णकुमारी—(जल्दी से प्याला लेकर) बस शान्ति,...शान्ति, माँ!

पटरानी—(और जोर से रोते हुए) बाई...बाई...तू मृत्यु के साथ खेल रही है!

कृष्णकुमारी—जो जीवन के साथ खेलता है उसे अवसर पड़ने पर मृत्यु के साथ खेलने को भी तैयार रहना चाहिए, माँ। (प्याले और उसमें भरे हुए विष को देखते हुए) प्रिय प्याले, कितने...कितने सुन्दर हो तुम और कितना कितना शान्त है तुम में भरा हुआ यह विष! (भरे हुए विष को संबोधन कर) हे हलाहल! तुमने महादेव के महाकंठ को आकाश के सदृश नीला, शून्य, किन्तु महान् बना दिया। हे मृत्यु के प्रतीक! पहुँचा दो, मुझे अपने प्रभु की गोद में जो सुखद और शान्त है। हे मृत्यु के सोपान! गरल होने पर भी तुम कैसे तरल दिखते हो, थोड़े से कंप से भी कैसी छोटी छोटी उर्मियाँ उठती हैं, तुममें। वही हाल तुम्हारे प्रभु की गोद का भी होगा। मृत्यु से अधिक सदय और शान्त कौन है, जो हीन, दीन, दुखी और दुर्बल का त्राता है? उससे अधिक सदय और शान्त कौन हो सकता है? पहुँचा, पहुँचा दो मुझे उसी की गोद में। शान्ति दे दो मुझको, और शान्त कर दो मेरे कुल, मेरी जाति, मेरे समाज, मेरे देश की इस अशान्ति को।

[कृष्णकुमारी एक साँस में प्याला खाली कर क़ालीन पर रख देती है।]

कृष्णकुमारी—माँ, यह तो मैं नहीं जानती कि मृत्यु अच्छी चीज है, या बुरी, पर मुझे इसमें सन्देह नहीं, कि मैं एक महान् कार्य सम्पन्न करने के लिए उसका आलिंगन कर रही हूँ। फिर यदि यह नहीं कहा जा सकता

कि मृत्य अच्छी चीज है या बुरी तो उसे बुरा मान लेना भी अनुचित है; साथ ही उससे भयभीत होना तो कायरता है।

पटरानी—(रोते रोते) बेटी...बाई, बाई...तू क्या...क्या.. (हिचकियाँ बँध जाती हैं।)

कृष्णकुमारी—माँ, तुम तो मुझसे...मुझसे भी छोटी बन रही हो ? मृत्यु के लिए इतनी कातरता, इतना शोक, इतना भय ? माँ, जिसने कभी कोई बुरा काम नही किया, वह न जीवन में किसी काम से भयभीत हो सकता और न उसे मृत्यु के बाद कोई वस्तु कष्टप्रद होगी, इसका ही भय रह सकता। मृत्यु या तो सदा के लिए आराम से सो जाना है या किसी अन्य लोक को जाना है और या इसी लोक को पुनः लौटकर आ जाना है। पहली बात अच्छे और बुरे दोनों के लिए समान रूप से अच्छी है। बिना स्वप्नों की रात किसे नहीं अच्छी लगती ? और दूसरी दो बातों से अच्छी बातें अच्छे व्यक्ति के लिए तो हो नहीं सकतीं, क्योंकि अच्छा व्यक्ति या तो इस लोक से किसी अच्छे लोक को जायगा अथवा इस लोक में और अच्छी योनि पायगा। यात्रा मुझे कितनी प्रिय है, यह तुम जानती हो।...माँ, (खिड़की से बाहर देखते हुए) उन अरावली पहाड़ियों की यात्राएँ, भगवान् एकलिंग के मन्दिर और जय-समुन्द के घाटों की यात्राएँ ही मुझे कितना सुख देती थीं ? फिर इस यात्रा में तो मुझे न जाने क्या क्या देखने को मिलेगा। किसी अच्छे लोक में पहुँचने के पश्चात् कैसा अच्छा संग पाऊँगी वहाँ। इस लोक में तो अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के व्यक्ति हैं। उस लोक में तो सत्कर्म करने वाले ही पहुँचते होंगे, वहाँ तो सभी अच्छे होंगे, माँ। और यदि इसी लोक में नयी योनि मिली तो वह भी एक सत्कर्म करने के कारण इससे तो अच्छी ...कहीं अच्छी होगी। एक तो परिवर्तन ही सुखद है और फिर अच्छा परिवर्तन तो कहीं अधिक सुखद।

अजीतसिंह—(जो खड़े-खड़े ही कृष्णकुमारी की ओर देख, उसका

यह भाषण सुन रहा था) क्यों, राजकुमारीजी, पैरों में कुछ भारीपन मालूम होता है ?

कृष्णकुमारी—(पैर पृथ्वी पर ठोंकते हुए) नहीं, ठाकुराँ, मुझे तो कुछ नहीं जान पड़ता।

अजीतसिंह—और कोई बात मालूम होती है ?

कृष्णकुमारी—(कुछ देर सोच कर) नहीं मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम होता।

अजीतसिंह—(आश्चर्य से) ऐसा !

कृष्णकुमारी—(प्याला उठाकर) एक प्याला और दो, ठाकुराँ। (प्याला अजीतसिंह को देती है।)

अजीतसिंह—(प्याला लेते हुए) ऐ....ऐसा....ऐसा.... (प्रस्थान।)

पटरानी—(दुःख से) दुष्ट !

कृष्णकुमारी—माँ, तुम निरर्थक ही दुखी हो रही हो।

[भरे हुए प्याले के साथ अजीतसिंह का प्रवेश। कृष्णकुमारी उसके हाथ से प्याला ले उसे भी एक साँस में खाली कर क़ालीन पर रख देती है।]

कृष्णकुमारी—माँ, जो मृत्यु से डरते हैं, वे अनित्य वस्तुओं के प्रेमी हैं—जैसे अच्छा भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण, आलीशान महल, हरे भरे बाग-बगीचे। ये सब एक न एक दिन छूटने वाले ही हैं, फिर इनमें आसक्ति से लाभ ? और अनित्य की आसक्ति तो धीरे-धीरे गुलामी में परिणत हो जाती है, जो क्षण-क्षण पर मृत्यु का आलिंगन है। हर क्षण अनित्य के छूटने का भय, मृत्यु का-सा भय है। आत्मा या तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती है और तब उसके नाश का शोक ही निरर्थक है, क्योंकि शरीर का नाश तो अवश्यंभावी है, और या आत्मा अमर है। अमर आत्मा का प्रेम चाहिए नित्य के साथ और उस प्रेम के पश्चात् तो यह आवागमन उन यात्राओं के सदृश है जो पल-पल पर परिवर्तित

हो नया आनन्द देती हैं। हाँ, नित नये जन्म के वाद इस अनित्य का संपर्क भी होता है, पर वह तो यात्रा के साथियों के सदृश माना जाना चाहिए। (कुछ रुककर, खड़े हुए अजीतसिंह से) ठाकुराँ, कैसा तुम्हारा विप है ?

अजीतसिंह—(आश्चर्य से) क्या कोई असर नहीं हुआ, राजकुमारी ?

कृष्णकुमारी—थोड़ा भी तो नहीं, ठाकुराँ।

इन कापुरुषों के घृणित षड्यन्त्रों, इन कायरों की कुत्सित...

कृष्णकुमारी—(बीच ही में अजीतसिंह को प्याला देते हुए) और...और लाओ, ठाकुराँ; तेज...खूब तेज लाओ।

[अजीतसिंह का प्याला ले नीचे मुख किये हुए प्रस्थान।]

पटरानी—(और उत्सुकता से) चाहे कितना...कितना ही विप तू पिये, बेटी, तुझ पर विष का कोई असर न होगा। तुझ पर शस्त्र भी प्रहार न कर सकेंगे। तुझे अग्नि भी न जला सकेगी।

[अजीतसिंह का भरे हुए प्याले के साथ प्रवेश। कृष्णकुमारी उसे ले उसकी ओर देखती है।]

कृष्णकुमारी—तीसरी वार भी धोखा न देना। क्या...क्या मृत्यु भी मेरे लिए इतनी...इतनी मँहगी हो गयी ? क्या मृत्यु की गोद में भी...

[कृष्णकुमारी इस प्याले को भी खाली कर क़ालीन पर रख देती है।]

कृष्णकुमारी—माँ, यह निश्चयपूर्वक न जानने पर भी कि मृत्यु के वाद क्या होता है, एक निश्चित वात से मुख मोड़ लेना तो निर्बुद्धिता का द्योतक है। मृत्यु के पश्चात् क्या होगा यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं जानती,

पर यह जानती हूँ कि मेरी मृत्यु से मेवाड़ पर आये हुए सारे संकट दूर हो जायँगे। तब मैं ऐसी निर्बुद्धि तो नहीं कि अनिश्चितता के भय से निश्चितता से मुख मोड़ लूँ। फिर एक न एक दिन मृत्यु आयगी यह भी निश्चय है और जीवन चला तो उसमें सुख पाऊँगी या दुख यह अनिश्चित। ऐसी दशा में अनिश्चित सुख के लिए एक न एक दिन आने वाली निश्चित मृत्यु को, जब वह एक उत्तम अवसर देखकर आयी है, तब क्यों छोड़ दूँ? आगे तो कदाचित् वह ऐसे समय आवे जब उसमें कोई विशेपता ही न रहे। आज मेरी मृत्यु की विशेपता यह है कि उससे सबके संकटों का निवारण होता है। माँ, ऐसी मृत्यु...ऐसी महान् मृत्यु...किस किस के भाग्य में बदी होती है? (कुछ रुककर अजीतसिंह से) अरे कैसा... कैसा विप है तुम्हारा, ठाकुराँ? (प्याला देते हुए)...कसूँबा... कसूँबा का तेज़...तेज़ से तेज़ विप लाओ। मैं अब इस शरीर को क्षण ...क्षण भर भी नहीं रखना चाहती।

[अजीतसिंह का चुपचाप प्याला लेकर प्रस्थान।]

पटरानी—(प्रसन्नता से) परन्तु...परन्तु...बाई, माता अंबा ...माता अंबा की कृपा से तेरा शरीर रहने वाला ही है। तेरा बाल ...बाल तक बाँका नहीं हो सकता।

[अजीतसिंह का प्रवेश।]

कृष्णकुमारी—(प्याले को देखते हुए) राजस्थान में, मेवाड़ में, शुभ और अशुभ, जन्म और मृत्यु सबको तू रंग देता है, कसूँबा! जैसा गहरा तेरा रंग है वैसा ही गहरा तेरे विप का असर। मुझे विश्वास है तू...तू मेरी प्रार्थना सुनेगा...अवश्यमेव सुनेगा। तू मुझे धोखा न देगा। कभी नहीं।

[इस प्याले को भी कृष्णकुमारी खाली कर क़ालीन पर रखती है।]

कृष्णकुमारी—माँ, मनुष्य को केवल एक बात सोचना चाहिए कि वह ठीक कार्य कर रहा है या नहीं; जीवन-मृत्यु की परवाह किये बिना

सुख-दुख की चिन्ता किये विना, अरे अवस्था तक की ओर न देखकर उसे केवल इस वात को अपना ध्रुव तारा वना सव कुछ करना चाहिए। ऋषि-महर्षियों ने, ब्रह्म और राजर्षियों ने कभी जीवन-मृत्यु की ओर दृष्टि नहीं डाली। दधीचि ने अपनी अस्थियाँ दे दीं और न जाने किस किस ने क्या क्या? राजपूतनियों ने तो प्राणों को सदा हथेली पर ही रखा है...एक दो ने, दस वीस ने, सौ दो सौ ने नहीं, हजारों ने। (अजीतसिंह की ओर देखकर) हाँ, ठाकुराँ, इस वार तुम सफल हुए।

[पटरानी की सारी प्रसन्नता हवा हो जाती है। वह झपटकर कृष्णकुमारी को गोद में लिटा लेती है। अजीतसिंह निकट वैठ जाता है।]

कृष्णकुमारी—माँ, धैर्य्य रखना...भाईजी...भाईजी को सँभालना। उन्होंने वुरा...वुरा नहीं उत्तम...उत्तम से उत्तम कार्य किया है। यह न सोचना कि उन्हें मुझसे प्रेम नहीं था। संसार में कदाचित् मुझसे अधिक वे किसी को नहीं चाहते। पर राज...राजधर्म में दीक्षित होने के कारण व्यष्टि की ओर न देख समष्टि की ओर देखना, और अपनी निकट से निकटतम वस्तु का भी अपने धर्म के लिए वलिदान दे देना, उनका कर्तव्य ही है। और फिर उन्होंने मुझे... मुझे कैसी महान् मृत्यु दी है। (अजीतसिंह से) ठाकुराँ, दरवार को ला सकोगे? वे इस दृश्य को नहीं देखना चाहते इसीलिए यहाँ नहीं हैं, यह मैं जानती हूँ, परन्तु अन्तिम समय में उनके दर्शन चाहती हूँ। मेरे पैर शून्य हो गये हैं, शून्यता वढ़ रही है।

[अजीतसिंह का चुपचाप प्रस्थान। पटरानी के आँसू वहने लगते हैं।]

कृष्णकुमारी—(सामने की ओर देखते हुए) माँ,...माँ...देखो ...देखो...सामने...सामने मुझे दधीचि...दधीचि ऋषि के दर्शन हो रहे हैं। (कुछ रुककर) और...और देखो...देखो वह...वह ...राजपूतनियों के जौहर...जौहर दिख रहे हैं। आह! ...कैसे

...कैसे सुख...कैसे...कैसे हर्ष...कैसे...कैसे...उत्साह...कैसे...कैसे...साहस...से ये वीर-बालाएँ अग्नि में कूद कूद कर उसकी ज्वालाओं, उसकी लपटों के साथ स्वर्ग को जा रही हैं। (कुछ रुककर) और...और...देखो...देखो, माँ...करो...करो दर्शन मीरा...मीरा देवी के। वे...वे...किस...किस शान्ति...किस अखंड शान्ति, किस अपूर्व शान्ति से विष का मनवार प्याला पी गिरिधर गोपाल...हाँ, माँ, गिरिधर...गिरिधर गोपाल में लीन हो रही हैं।

[कृष्णकुमारी एकटक सामने की ओर देखती है; पटरानी कृष्ण-कुमारी की ओर। उसकी आँखों से चौधारे आँसू बहते हैं। भीमसिंह का अजीतसिंह के साथ प्रवेश। भीमसिंह के मुख पर महान् शोक छाया हुआ है। भीमसिंह शीघ्रता से कृष्णकुमारी की ओर बढ़ता है।]

भीमसिंह—(जल्दी से कृष्णकुमारी के पास बैठते हुए) बेटी...बेटी...

[कृष्णकुमारी की दृष्टि भीमसिंह की ओर घूमती है। उसके ओठों पर मुस्कराहट आ जाती है, पर उसी समय उसके नेत्र बन्द हो जाते हैं। भीमसिंह और पटरानी उच्च स्वर से रो पड़ते हैं।]

यवनिका

उपसंहार

स्थान—राज-श्मशान

समय—संध्या

[पीछे की ओर कई ऊँची-ऊँची छतरियाँ (समाधियाँ) दिखती हैं, जिनके सोने के कलश डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों में चमक रहे हैं।

बीच में चिता जल रही है। दाहिनी ओर अनेक व्यक्ति जमीन पर बैठे हुए हैं। सब के सिर पर सफ़ेद पोतिये (शोक के समय के सिर पर बँधे हुए वस्त्र) हैं। बाईं ओर ज्वानसिंह और संग्रामसिंह खड़े हैं। इन दोनों के सिर पर भी पोतिये हैं। संग्रामसिंह की अवस्था लगभग २५ वर्ष की है। वह कुछ साँवले रंग का, ऊँचा पूरा, दोहरे शरीर का युवक है। ऊपर चढ़ी हुई मूँछें हैं।]

संग्रामसिंह—(लंबी साँस लेकर) कँवरजी, यह चिता कृष्णकुमारी की नहीं यथार्थ में राजपूत-जाति की है।

ज्वानसिंह—(संग्रामसिंह की ओर देखते हुए) राजपूत-जाति की ?

संग्रामसिंह—हाँ, राजपूत-जाति की, कँवरजी। (चिता की ओर देखते हुए) जो अग्नि कृष्णकुमारी के विवाह की वेदी में प्रतिष्ठित होनी चाहिए थी, वह अग्नि आज कृष्णकुमारी के मृत शरीर को ही नहीं जला रही है, पर राजपूत-जाति को भस्म कर रही है। (कुछ रुक कर) और जानते हो कृष्णकुमारी का विवाह किससे होना चाहिए था ?

ज्वानसिंह—(संग्रामसिंह की ओर देखते हुए) किससे, संग्रामसिंह जी ?

संग्रामसिंह—श्रीमन्त सींधिया से।

ज्वानसिंह—(आश्चर्य से) श्रीमन्त सींधिया से ! शिशोदिया कुल की राजकुमारी का विवाह शूद्र से ?

संग्रामसिंह—मराठे शूद्र नहीं, सच्चे क्षत्रिय हैं, कँवरजी। आज वे जिस प्रकार क्षात्र-धर्म का पालन कर रहे हैं, अन्य कोई जाति नहीं। राजपूतों और मराठों का यह विवाह इन दो महान् जातियों के एकीकरण का आरंभ होता। कदाचित् देश का, समूचे भारत का इतिहास पलट देता, किन्तु...किन्तु, कँवरजी, राजपूतों की यह अदूरदर्शिता, यह संकीर्णता...आह...आह...(कुछ रुककर) कँवरजी, कृष्णकुमारी सीधे स्वर्ग को गयी है, स्वर्ग से ऊँचा कोई लोक होगा तो उसको

गयी है। उसकी सद्गति, उच्चतम गति में सन्देह नहीं। इस जमाने में बड़े बड़े धर्माचार्य, बड़े बड़े दार्शनिक जो नहीं कर सकते वह इस बालिका ने किया, परन्तु...परन्तु, कँवरजी, कृष्णकुमारी को जो बात उच्च से उच्च स्थान देने का कारण हुई वही राजपूत-जाति को निम्न से निम्न स्थल पर ले जायगी। कृष्णकुमारी के शव की भस्म के साथ राज-पूत-जाति भी सदा के लिए भस्म हो जायगी।

[दाहिनी ओर से एक वृद्ध ब्राह्मण बाईं ओर आता है।]

ब्राह्मण—(ज्वानसिंह से) कँवरजी, कपाल-क्रिया का समय हो गया।

[ज्वानसिंह लंबी साँस ले ब्राह्मण के साथ दाहिनी ओर बढ़ता है।]

यवनिका

समाप्त